# आर्य पथिक ग्रन्थ

अर्थात्

"बुल्लियात आर्य मुसाफिर"

का

आर्य भाषानुवाद

प्रवर्त्तक तथा आर्य्य पथिक

का

जीवन चरित्र

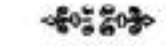

अनुवादक

अनुभवानन्द "शान्त"

प्रकाशक

के० सी० भल्ला

अध्यक्ष स्टार प्रेस प्रयाग।

—०—

संस्करण १९७४ वि० [ मूल्य ।=)

# समर्पण

परमादरणीय श्रीस्वामी सर्वदानन्दजी महाराज ?

—किं कर्त्तव्य विमूढ़ की भांति जीवन व्यतीत करते हुए मुझे आप ही ने अपने तटस्थ किन्तु सरल उपदेश से इस मार्ग की ओर प्रवृत्त किया था। आपके त्याग एवं धर्म परायण जीवन ने मुझे अधिकाधिक आपके समीप पहुँचने में सहायता दी। मैं आपके उन मानसिक उपकारों के बदले में और कुछ भी देने की शक्ति न रखता हुआ इस अनुवाद रूपी आर्ष पथिक की कृतियों को आपके कर कमलों में **सादर समर्पित करता हूं।**

यद्यपि मेरा इस पर भी कुछ स्वत्व नहीं है—इसका वास्तविक स्वामी आर्य समाज का एक अविश्रान्त सेवक आर्यवीर है, पर इस का यह रूपान्तर मेरे हाथों से हो रहा है। यदि मैं भक्ति पूर्वक इस रूपान्तर को भी श्रीमन्त के कर-कमलों में दूं तो भी विश्वास है कि श्रीमन्त इस भेंट को अस्वीकार नहीं करेंगे।

विनीत सेवक,

—"शान्त"

# निवेदन ।

आर्य संसार को आर्यवीर पं० लेखराम का परिचय देना आर्य वीर के नाम का अपमान करना है। उसे समस्त आर्य जगत् भली भाँति जानता है। आर्यवीर की धर्मपरायणता—धर्मनिष्ठा किसी से छिपी नहीं है। उनकी वक्तृता—उनकी लेखनी में एक विशेष शक्ति थी जिसे सब अनुभव करते हैं।

आप सन् १८८४में सरकारी सेवा से पृथक हुए और सन् १८९ ई० के मार्च मास में मुसलमानों की छुरी के शिकार हुए। इस प्रका सब मिलाकर लगभग १३ वर्ष आपने आर्य—समाज की सेव की, जिसे कि आर्य समाज का शत्रु मित्र सभी कोई जानता है। इ तेरह वर्षों में सैकड़ों व्याख्यान दिये, सैकड़ों शास्त्रार्थों—शंकासम धानों—में सम्मिलित हुए और सैकड़ों ही लेख विविध समाचा पत्रों में प्रकाशित कराये। इसके अतिरिक्त स्वपक्ष स्वीकरण और प पक्ष निराकरण में छोटी मोटी सब मिला कर तैंतीस पुस्त लिखीं जो इसी आकार के हिन्दी अनुवाद के ५००० पृष्ठों से ऊप में समाप्त हो पायेंगी। स्वामी जी के जीवन के सम्बन्ध में जित खोज की और उस विषय में जितने कागज़पत्र वे छोड़ गये वे स इससे पृथक हैं।

यदि पंडित जी के इन १३ वर्षीय कार्य्य-कलाप पर दृष्टि डा जाय तो बुद्धि चकरा जाती है। समझ में नहीं आता कि अपना न "आर्यपथिक" रख कर दिन रात यात्रा करने वाला मनुष्य—जि एक स्थान पर एक मास भर रहना सर्वथा कठिन रहा हो—इत काम कैसे कर गया और वह भी अपनी कला में सर्वांग पूर्ण

तुर्रा यह कि इतनी पुस्तकों—लेखों—में एक वाक्य भी ऐसा नहीं दिखाई देता जिसे कि व्यर्थ कहा जा सके।

काश ! आर्य समाज की अधूरी डुग डुगी पीटने वाले उपदेशकों में रत्ती भर भी लेखराम की सी धुन होती तो आज यह शिकायत सुनने में न आती कि आर्य समाज का काम ढीला पड़ रहा है। आर्यवीर ने अपने वर्तमान शरीर को छोड़ते समय जो आदेश किया था वह यह था कि :—

"आर्य्य समाज से लेख का काम बन्द न होना चाहिए" इसका पालन आर्य समाज की ओर से यद्यपि किया गया पर इतनी मात्रा में नहीं जिसे कि सर्वांश में उचित या पर्याप्त कहा जा सके।

आर्यवीर की सम्पूर्ण पुस्तकें उर्दू भाषा में प्रकाशित हुई, उर्दू क्या बल्कि उर्दू, फ़ारसी और अर्बी में प्रकाशित हुई जो न तो आर्य जाति की मातृ भाषा थी और न उसे समस्त आर्य पुरुष पढ़ ही सकते थे। इसका परिणाम यह अवश्यम्भावी था कि आर्य पथिक के विचारों से पंजाब और युक्त प्रान्त के कुछ भाग को छोड़ शेष समस्त आर्य संसार अनभिज्ञ वरन वञ्चित रहता। आर्य समाज के अविश्रान्त लेखक एवं प्रचारक आर्य पथिक के विचारों से आधे से अधिक—आर्य संसार अपरिचित रहे, आर्य समाज के लिए यह कुछ कम शोक और लज्जा की बात नहीं है। इस लिए आर्य भाषा भाषी आर्य महाशयों को स्टार प्रेस के अध्यक्ष महाशय कर्म चन्द शर्मा का उपकृत होना चाहिए जिनकी प्रेरणा वरन अनुरोध से इस पुस्तक भन्डार का अनुवाद आरंभ किया गया है।

मैं यह अच्छी तरह जानता हूं कि अनुवादक में जिन गुणों की आवश्यकता है और उसको जिस योग्यता का होना अनिवार्य है। वैसे गुण और वैसी योग्यता का मुझ में अभाव है विशेषकर पंडित

लेखराम की इतनी क्लिष्ट भाषा में लिखी गई पुस्तकों का भाषान्त
तेा एक ओर, उनके समझने के लिए भी मुझे अभी बहुत येाग्यत
प्राप्त करने की आवश्यकता है पर वर्षों व्यतीत हेा जाने पर भी इ
पुस्तकों का हिन्दी भाषान्तर होते न देख मेरे जैसे मनुष्य व
उत्साहित हेा जाना मेरे लिए कोई लज्जा की बात नहीं है। हां फ़ारस
और उर्दू के उन सामाजिक विद्वानों के लिए लज्जा की बात अवश
है, जिनके आलस्य और प्रमाद से लाभ उठाकर एक थोड़ी येाग्यत
का मनुष्य इस महा कार्य के करने के लिए उद्यत हुआ है।
यतः उर्दू या फ़ारसी का विद्वान नहीं हूं इस लिए मेरे इस अनु
वाद में जितनी भी भाषा सम्बन्धी अशुद्धिएँ निकलेंगी उन क
उत्तर भार आर्य समाज के उन विद्वानों पर ही समझना चाहि
जो येाग्यता रखते हुए भी इस कार्य में प्रवृत्त नहीं हुए ?

सेवक विनीत—

अनुभवानन्द "शान्त !"

ओ३म्

# अवतरण

मानव जीवन भी एक बड़ा अद्भुतालय है—विचित्रताओं व
संग्रह है इस में नाना प्रकार के विचारों-कर्मों के चित्र भरे हु
हैं। मनुष्य को नित्यप्रति नवीनाति नवीन अनुभव करने का अ
काश मिलता रहता है। इसी लिए प्रतिदिन उसके विचारों में कु
न कुछ परिवर्तन बराबर देखने में आता है। आज यदि वह कि
एक विषय की अनुकूलता दिखा रहा है तो कल संभव है उर
विषय में प्रतिकूल विचार प्रकट करने के लिए तैयार होजाय
मनुष्य को यह उचित अभिमान है कि वह अपनी विचार शक्तियों वे
काम में लाता हुआ बहुत कुछ उन्नति कर सकता है। संसार व
विस्तृत क्षेत्र, प्रकृति देवी की विचित्र शक्तिएं एवं घटनाएँ उ
सदा उन्नति के लिए उकसाती और प्रेरणा करती रहती हैं। कि
यदि मनुष्य इन प्राकृत और दैवी शक्तियों को सर्वथा भुला क
अपनी आदर्श जीवन सत्ता और अपनी विचार शक्तियों प
ही समस्त संसार को समाप्त कर दे तो समझना चाहिए कि उ
ने अपने आपको बहुत ही परिमित एवं संकुचित बनाने का प्रयत
किया है। ऐसी दशा में उसे प्रकृति की ठोकरों का लक्ष्य बनते हु
फुटबाल की भांति इधर उधर न जाने कितने धक्के खाने पड़ेंगे

## परिवर्तन

प्रकृति एवं प्राकृत सृष्टि सब परिवर्तन शील हैं। इसी लि
प्रकृति के साथ सम्बन्ध रखने वाले मनुष्य के विचार सागर

सदा नाना विधि तरंग उठते और विलीन होते रहते हैं। वे एक परिवर्त्तनों की कल से बने रहते हैं। डाक्टर लोग कहते हैं कि मानव शरीर प्रति सात वर्ष के पीछे सर्वथा बदल जाता है। मानव शरीर चाहे सात ही वर्ष पीछे बदलता रहे: मानव विचारों में तो सदा ही कुछ न कुछ उथल पुथल होती रहती है। मानव समुदाय का ही दूसरा नाम जाति अथवा समाज है। जिस प्रकार प्रत्येक मनुष्य व्यक्ति रूप से परिवर्त्तन शीलता का अनुयायी है उसी प्रकार मानव समाज और मानव जाति भी समष्टि रूप से इसी चक्र में है।

संसार में बहुत सी ऐसी जातिएं उत्पन्न हुईं जिन का इस समय नाम के अतिरिक्त और कुछ शेष नहीं रह गया। अस्तु इतना होने पर भी संसार का इतिहास बतलाता है कि मनुष्य ने सारे संसार को अपने जीवन में चरितार्थ करने का प्रयत्न तो किया है पर सर्वथा अपने में समाप्त नहीं कर दिया।

यह सत्य है कि संसार में आस्तिक एवं नास्तिक नाम के दो दल बहुत पुराने चले आ रहे हैं पर यह सत्य है कि नास्तिक दल सदा परिमित और संकुचित बना रहा है वह कभी बहु व्यापी मत नहीं हुआ है। अधिक संख्या सदा उन लोगों की रही है। जो आस्तिक थे, जो अपने जीवन मात्र में संसार भर की सत्ता को परिमित समझने वाले न थे। हां ऐसे नास्तिकों के अतिरिक्त—जो कि ईश्वर एवं जीव को नहीं मानते—शेष समग्र संसार का उपासक संप्रदाय, चाहे वह कितने ही मतों में विभक्त क्यों न हो या —इस बात पर विश्वास रखता है कि इस क्षण भंगुर—पाञ्चभौतिक—शरीर के अनन्तर एक दूसरा जीवन भी है, जिसमें कि सुख, आनन्द, स्वतन्त्रता, और निर्भयता आदि व्यापक हैं। धार्मिक विचारों से सम्बन्ध रखने वाला प्रत्येक मनुष्य उस सुखमय

आनन्दमय, उच्चतम-स्वतन्त्र जीवन की प्राप्ति के लिए सब प्रका के कर्म क्षेत्र में अवतीर्ण हो रहा है। कोई उसका नाम अपने मता नुसार मोक्ष रक्खे, निर्वाण रक्खे या निजात आदि नामों से स्म रण करे, किन्तु उससे किसी आस्तिक को इनकार नहीं है। इन इं गिने नास्तिकों को छोड़ संसार का एक बहुत बड़ा भाग उस जीवन की इच्छा रखता है, जो सब प्रकार की चिन्ताओं, दुःखों, क्लेशों एवं बन्धनों से परे है। यह ठीक है कि जो चित्र इस जीवन के पौराणिक ग्रन्थ मालाओं ने खींचा और संसार के सन्मुख उपस्थित किया है वह बनावटी एवं निरा कल्पना मात्र है यह ठीक है जिस जीवन का पता जैन मत हमारे सामने रखता है वह अवास्तविक है यह भी ठीक है कि इस विषय में बाइबिल ने जो कुछ वर्णन किया है उसमें भी मानव-मस्तिष्क के चमत्कार मात्र हैं और यह भी सत्य है कि इस जीवन का जो चित्र कुरान ने खींचा है वह भी मानव-मस्तिष्क का ही आविष्कार मात्र है पर इतने भेदों के होते हुए-इतने मतों की उपस्थिति में-इतनी विभिन्नता के होने पर-भी उस जीवन से, उस दशा से और उस आनन्दावस्था से किसी भी आस्तिक को इनकार नहीं हो सकता। बल्कि ये सब के सब विरोध, ये तमाम के तमाम चित्र उसके होने में, उसकी वास्तविकता में, प्रबल साक्षी की भांति काम कर रहे हैं। इतनी प्रबल साक्षिएं-सार्व भौम इच्छाएं, उस सचाई का मुक्त कण्ठ से पता देती हैं जो कि मानव-जीवन और मानव-कर्म कलाप का अन्तिम लक्ष्य है।

आत्मा अमर है, वह एक उच्च उद्देश रखता है, उसके सन्मुख एक अद्वितीय आदर्श है। उसे मोक्ष सुख, ईश्वरीय आनन्द और अलौकिक-शान्ति को प्राप्त करना है। उसे संसार के सम्पूर्ण बन्धनों, दुःखों, क्लेशों एवं यातनाओं से छूट कर अलौकिक आनन्द

का उपभोग करते हुए स्वतन्त्रता पूर्वक ब्रह्माण्ड में विचरना है क्या आत्मा इस सुख को, इस आनन्द को, इस स्वतन्त्रता को यूं ही प्राप्त कर लेगा ? नहीं, कदापि नहीं। इसके लिए उसे कां साधनों की आवश्यकता है—कई धारणाओं की आवश्यकता है।

## धर्म और उसकी आवश्यकता

इस उपर्युक्त अलौकिक सुख, शान्ति, एवं आनन्द की प्राप्ति के लिए जितने भी उच्चतम साधन काम में लाये जाते हैं, एक शब्द में उन समस्त साधनों को हम धर्म्म कह सकते हैं। धर्म वस्तुतः मानव-जीवन का सार है, मानव-आत्मा का पथ प्रदर्शक है, आत्मिक-जीवन का आधार और स्वर्गीय सुख एवं ईश्वर प्राप्ति का द्वार है। धर्म एक इतना भावपूर्ण एवं तत्वगर्भित शब्द है कि इसकी सर्वांग व्याख्या किसी एक वाक्य श्लोक, वरन पुस्तक में भी कर देना न केवल कठिन ही है बल्कि इस पवित्र शब्द को संकुचित कर देने की कोशिश करना है जो सर्वथा अनुचित ही है। हां, थोड़े से शब्दों में धर्म का आंशिक परिचय देने के लिए यही कहना होगा कि धर्म्म मानव जीवन की व्याख्या करता हुआ उसके लिए ऐसे नियमों का निर्धारण करता है कि जिन पर चलने या आचरण करने से प्रत्येक मनुष्य अपने जीवन का सदुपयोग करता हुआ संसार में सुख शान्ति से जीवन व्यतीत करता हुआ उस ईश्वरीय आनन्द का अधिकारी बन सके जो कि इसका मूलोद्देश एवं अंतिम लक्ष्य है,। मानव-मानस के अथाह समुद्र में प्रति दिन अनेक प्रकार के तरंग उठते और विलीन होते रहते हैं। इतिहास इस बात का साक्षी है कि जातीय सागरों में अनेकोंवार ज्वार भाटा उठा और जातियों को उथल पुथल करके विलीन हो गया। परन्तु धर्म ने उस समय में भी मानव-जीवन को शान्ति प्रदान की। जो मानव

समाज इस सचाई से विमुख हुए या हैं, वे कभी भी अपने आपको इस शान्ति निकेतन का अधिकारी नहीं समझ सकते।

धर्म ही एक ऐसी ढाल है जिसे काम में लाता हुआ मनुष्य समाज संसार भर की आपत्तियों को सहन करता या उनका मुकाबला करता हुआ भी अपने आपको प्रशान्त महासागर की भांति अचल रख सकता है। किन्तुः—धर्म शब्द से हमारा अभिप्राय किसी सम्प्रदाय विशेष से नहीं है। यहां पर हम धर्म शब्द के बहुत ही विस्तृत अर्थों में प्रयुक्त कर रहे हैं। बल्कि धर्म से हमारा अभिप्राय उस स्वाभाविक धर्म से है, जिसमें कि किसी मनुष्य के संकुचित एवं संकीर्ण विचारों का समावेश तथा स्पर्श भी न हुआ हो, जो प्रकृति के विस्तृत क्षेत्र से अनुभव द्वारा प्राप्त किया गया हो; और जो ईश्वरीय ज्ञान एवं नियमों का सर्वांग द्योतक हो। वह आबाल वृद्ध के लिए समान रूप से हित साधक होना चाहिए इसमें किसी व्यक्ति-जाति अथवा देश विशेष न पाया जाना चाहिए उसे मानव जीवन का आदि उद्बोधक होना चाहिए और मानव जीवन के उस लक्ष्य के साथ मिलने में समर्थ होना चाहिए जो कि मनुष्य का वास्तविक अन्तिम लक्ष्य है।

## आदि धर्म्म

प्रत्येक मनुष्य के हृदय में स्वभावतः यह प्रश्न उठ सकता कि वह कौन सा धर्म्म है जिसने सब से पहले मानव-जीवन को उद्बोधन कराया जिसने मानव-जीवन के अन्तिम लक्ष्य को पा दिया, जो मानव उद्देशों की विश्व व्यापक व्याख्या करता है, जो किसी भी देश जाति अथवा व्यक्ति को सम्बोधन न करके विस्तृत अर्थों में अपनी सत्ता और आवश्यकता का पता देता है; और जो प्रकृति, पुरुष की गहन विवेचना करता हुआ मानव—जीव

ा उसकी वास्तविक रेखा पर खड़ा करने का प्रबन्ध करता
? वह कौन सा आदिम महास्रोत है जिसकी धाराएं नाना-
प धारण करती हुई संसार के सभी धर्म-क्षेत्रों का सिंचन
र रही हैं। वह कौन सा वृक्ष है जिसमें संसार भर के
र्मिक विचार शाखा रूप होकर शोभा पा रहे हैं ?। शारीरिक
ीवन का आदि स्रोत यदि प्रकृति है जैसा कि सच है तो धार्मिक
वं आत्मिक जीवन का स्रोत निःसन्देह परमात्मा है। वर्त्तमान धर्म
द अथवा पन्थ पसार केवलमात्र मानव-मस्तिष्क के चमत्कार हैं,
ह सत्य है। पर जिस धर्मवाद पर यहां विचार किया जा रहा है
ह इन मतवादों से कोसों परे है। वर्त्तमान सम्प्रदाय वाद को इतना
स्तार भी वस्तुतः इसी लिए हुआ है कि इनको ईश्वरीय धर्म
सिद्ध किया गया। यदि ऐसा न किया जाता तो मनुष्यों को इन
श्रद्धा अथवा विश्वास होना सर्वथा कठिन था।

किसी भी ऐसे धर्मवाद को—जो सब से पिछला है—देखने से
ता लगता है कि वह अपने से पुरातन धर्मवाद से सम्बन्ध रखता
और उसने अपने धार्मिक संप्रदाय का मन्दिर खड़ा करने के
ए अपने से पुरातन धर्म से बहुत कुछ सहायता ली है। इसी
कार यदि प्रत्येक धर्मवाद का ऐतिहासिक क्रम या दृष्टि से अनु-
न्धान किया जाय तो धीरे २ क्रमशः एक ऐसे धर्म का पता पाया
ा सकेगा जो इन समस्त धर्मवादों का आदि जन्मदाता है।

एक और बात है जिस पर विचार करने की आवश्यकता है।
ह यह कि ईश्वर की सत्ता, जीव का अस्तित्व, प्रकृति, मुक्ति, सदा-
र, सत्यभाषण, ईश्वरीय ज्ञान आदि जितने भी धर्मवाद के
ाधार भूत स्तम्भ हैं; उनमें से एक भी किसी नवीन तर अथवा
ीन तम धर्मवाद के नेताओं ने उपस्थित नहीं किया। ये सब के
ब उतने ही प्राचीन हैं जितनी कि मानव—समाज की रचना

अथवा मानव—सृष्टि इत्यादि विवेचनाओं से निश्चित हो जाता है कि वास्तविक धर्म इन वर्त्तमान कर्मों से बहुत ही प्राचीन बल्कि यह इन सब का आदि बीज है, और उस आदि बीज का भी मूल आधार परमात्मा है।

## वेद

उपर्युक्त क्रम से अनुसन्धान करते हुए प्रत्येक विचार शील मनुष्य एक ऐसे समय पर पहुँचेगा कि जिसके आगे किसी धार्मिक सम्प्रदाय का सिलसिला नहीं चलता, जिससे पहले धार्मिक विचारों का पता नहीं मिलता। यही आदि काल है यही धर्मयुग का आरंभिक समय है, और यही मानव—संसार का प्रथम दिन है धार्मिकता का प्रत्येक अङ्ग मानव-समाज तक ज्ञान द्वारा पहुँचता है। ज्ञान ही धर्म जीवन का आदि बीज है, ज्ञान ही मानव-जीवन की समस्त उन्नतियों का मार्ग-दर्शक है। ज्ञान पर ही धर्म की नीव रक्खी हुई है। इस लिए मानव-सृष्टि के आरम्भ में धर्म द्योतक ज्ञान की ही परमावश्यकता है। आज तक ज्ञान-सम्बन्धी जितनी खोज हुई, उस तमाम का निचोड़ यही रहा है कि संसार के पुस्तकालय में वेद सबसे पहला पुस्तक है। यदि यह सच है, जिसमें कि सन्देह का कोई स्थान नहीं—तो विश्वास पूर्वक कहा जा सकता है कि वेद ही धार्मिक विचारों का जन्मदाता है। जब कि यह सिद्ध न हो ले कि वेद से पूर्व भी कोई पुस्तक संसार में विद्यमान था और वह अमुक जाति का अमुक पुस्तक था, तब प्रत्येक आस्तिक या सच्चे आस्तिक का मस्तिष्क वेद के आगे झुका रहेगा। इसमें सन्देह नहीं कि संसार भर के मतों की नीव ईश्वर की सत्ता पर निर्भर है। ईश्वर की सत्ता का पता सबसे पहले वेद ने दिया है इस लिए इस समय के धार्मिक दुकानदार कुछ भी क्यों न कहें

पर जिस सत्ता पर उनके मत की नीव है उसका पता देने वाले वेद के वे ऋणी अवश्य हैं।

यह ज्ञान जिसने कि ईश्वरीय अस्तित्व का मनुष्यों को सृष्टि के आरम्भ में पता दिया, वह ज्ञान जो कि मानव-जीवन की सांगोपांग व्याख्या करता है, वह ज्ञान जो मानव-जीवन के अन्तिम लक्ष्य को प्रकाशित करता है; वही ईश्वरीय ज्ञान है और वह सब धर्मों का जन्म दाता एवं आदि बीज है।

ईश्वर की सत्ता एवं गुण आदि के विषय में जो कुछ भी ज्ञान मानव-मस्तिष्क को प्राप्त है, मानव-सृष्टि के आरम्भ में भी वही था। उसमें अन्यान्य ज्ञानों की भांति अब तक उन्नति कुछ नहीं हुई। "ईश्वर दयालु है"—"ईश्वर न्यायकारी है"—"ईश्वर व्यापक है"—"ईश्वर सर्वशक्तिमान एवं सर्वान्तर्यामी है" इत्यादि ईश्वर के विषय में जो ज्ञान मनुष्यों को सृष्टि के आरम्भ में था, वही अब भी है, उसमें कुछ भी उन्नति या अवनति नहीं हुई है। विद्या विज्ञान के अन्यान्य विभागों में जितनी भी शीघ्रता के साथ क्रमशः उन्नति हुई है, उतनी या उससे बहुत कम भी ईश्वरीय गुण-ज्ञान के विषय में नहीं हुई है। अतएव भविष्य के लिए भी बिना सङ्कोच कहा जा सकता है कि शताब्दियों में सम्भूय रूप से भौतिक विज्ञान ( Material scicence ) ने अब तक जितनी उन्नति की है इतनी अथवा इससे भी कई गुणा अधिक उन्नति करता चला जाय, प्रकृति के असीम राज्य में कितने बड़े २ आविष्कार होकर गौरव प्राप्त करते जांय; किन्तु ऐसा होने पर भी ऐसा कोई समय कभी न आयेगा जिसमें कि मानव-मस्तिष्क ईश्वरीय गुणों के विषय में पहले की अपेक्षा कुछ अधिक जानने के योग्य हो सकेगा। यह हो सकता है कि वह ईश्वरीय भावों को अधिक शीघ्रता से अपने में स्थान देता हुआ आत्म विश्वास करता जाय, पर यह कभी न हो सकेगा कि

वह ईश्वरीय गुणों—शक्तियों में किसी नवीन-अज्ञात पूर्व गुण अथवा शक्ति की वृद्धि कर सके।

सच तो यह है कि धार्मिक उलझनों को सुलझाने के लिए इससे बढ़ कर और कोई साधन नहीं कि धर्म का आदि स्रोत परमात्मा माना जाय। वस्तुतः धर्म भी वही है जिसका आदि एवं अन्त परमात्मा में ही हो।

## आर्य जाति।

संसार के इस विस्तृत उद्यान में आर्य जाति एक ऐसा विशाल वृक्ष है कि जिसकी शाखा प्रशाखाओं का इस समय अन्त मिलना बहुत ही कठिन वरन असम्भव है। आर्य जाति न केवल ईश्वरीय ज्ञान की ही आदि से रक्षा करने वाली एवं स्वामिनी है बल्कि मानव सभ्यता और शिक्षा की भी जननी यही है। वह आर्य्य जाति ही है जिसने सारे संसार को प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से सभ्यता की शिक्षा दी है। "बाइबिल इन इण्डिया" का लिखने वाला अपनी पुस्तक के आरम्भिक पृष्ठों में ही लिखता है कि "मैंने मनु के नियमों को समझने की कोशिश की जिनके प्रबन्ध कि हज़ारों वर्ष पूर्व-जब कि इबरानियों की आज्ञाएं बादलों के गर्जने और बिजली के चमकने के समय आती थीं—ब्राह्मणों द्वारा पूर्ण होते थे। भारत-वर्ष मुझे पुनः अपनी वास्तविक दशा में दिखाई दिया। मैंने उसके द्वारा तमाम संसार में अन्तर्ज्योति फैली हुई देखी, मैंने भारत एवं आर्य जाति के आचारिक नियम और धार्मिक प्रभाव मिश्र, फ़ारिस, यूनान और रोम में पाये इत्यादि।

यदि संसार के इतिहास का ध्यान पूर्वक अनुशीलन किया जाय तो प्रत्येक मनुष्य इस परिणाम पर पहुँचे कि बहुत सी जातियां जो इस समय अपना सिर ऊंचा किये हुए हैं—कहीं की न होतीं यदि वे प्राचीन आर्य्य जाति के विद्या भण्डार में से बहुत बड़ी

मात्रा में उधार न लेतीं। जिस मद्य पान के रोकने के लिए आज संसार में बड़े २ सम्राटों की आज्ञाएं निकालने और स्वयं नमूना बनने की आवश्यकता पड़ रही है, जिस वेश्या वृत्ति के विरुद्ध आज हज़ारों मस्तिष्क युद्ध कर रहे हैं, जिस दुराचार को मिटाने के लिए आज संसार की तमाम शक्तिएं चिन्ता मग्न हो रही हैं; आर्य्य जाति का एक सामान्य राजा "अश्वपति" छान्दोग्य उपनिषद् में अभिमान पूर्वक कहता है कि "मेरे राज्य में एक भी चोर या डाकू, एक भी कंजूस, एक भी शराब पीने वाला, एक भी अग्निहोत्र का न करने वाला, एक भी अपढ़, और एक भी दुराचारी अथवा वेश्यागामी नहीं है, तब वेश्याओं की तो बात ही दूर रही।"

## आर्य जाति की विशेषताएं

आर्य्य जातिमें जहां अन्यान्य बहुत से गुण हैं—विशेषताएं हैं,—वहां दो गुण बहुत ही उच्च कक्षा के हैं। प्रथम यह कि आर्य्य जाति और उसका वैदिक-धर्म सदा से सर्वाङ्ग रूप में सूक्ष्माभिमुखी रहा है जो आज भी वैसा ही है। दूसरा यह कि उसके जीवन का समस्त कर्म कलाप धर्म परायण है। वैदिक धर्म प्रत्येक विषय में ब्रह्म को महत्व देता है इसी लिए वह सूक्ष्माभिमुखी है। आर्य्य जाति का प्रत्येक कर्म धर्म का अनुसरण करता है—इसी लिए वह धर्म परायण है।

महाशय "देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय" ने सर्वथा सच कहा है कि प्राचीन समय में आर्य्य जाति के किसी भी सदस्य का ग्रह उसकी स्वार्थ सिद्धि की साधन भूमि नहीं था और न परिवार उसके विलास के क्रीड़ा क्षेत्र ही थे। उसकी दृष्टि में संसार भोग विलास की लीला-स्थली न थी। एवं नहीं स्त्री पशुवृत्ति मात्र के पूरा करने की साधन ही। यह सच है कि अपने समय पर रोम सौभाग्य

सम्पत्ति के ऊंचे शिखर पर पहुंच चुका था। यह ठीक है कि यूना भी ज्ञान-गौरव के विषय में उन्नति शील हो चुका है। यह भी सत्य कि वर्त्तमान यूरोपीय जातियों ने ज्ञान-विज्ञान की भिन्न २ शाखा में उन्नत होकर नाना प्रकार के भोगों-विलासों का द्वार खो दिया है; परन्तु यह मानने को जी नहीं चाहता कि "आर्य जाति विना अन्य किसी भी जाति ने जीवन रूपी कर्म—क्षेत्र में उतर से पहले ही जीवन का लक्ष्य—अन्तिम लक्ष्य—स्थिर करके उ लक्ष्यानुसार छोटे बड़े पारिवारिक एवं सामाजिक कार्यों की रच करके उसी के अनुकूल चलने की चेष्टा की हो।" *

किसी भी जाति की महत्ता, उच्चता, सभ्यता एवं उन्नति शील का सबसे बड़ा परिचायक चिन्ह एक है और वह ज्ञान है। इस विना न तो कोई जाति उन्नत हो सकती है और न आज तक हुई है ज्ञान शब्द मय होता है। इस शब्द मय ज्ञान को ऐतिहासिक दृ से खोजते हुए ऐतिहासिक का मस्तिष्क वेदों तक पहुँच कर र जाता है।

आर्य जाति के दार्शनिक विचारों ने संसार को जो पथ दिख या है वह उसी का काम था। अध्यापक मैक्समूलर,, अपनी प्रसि पुस्तक India what can it teaches में लिखता कि "यदि मुझ कोई पूछे कि पृथिवी भर में वह कौनसा देश है कि जो धन एवं न नन्द वरन नैसर्गिक दृश्यों से परिपूर्ण है और कतिपय भागों में स मुच स्वर्ग का नमूना है तो मैं तत्काल आर्यावर्त्त की ओर अंगु उठाऊंगा। यदि मुझसे कोई पूछे कि पृथिवी के किस भाग उच्च कक्षा के ज्ञान का प्रकाश सब से पहले प्राप्त हुआ मानवी बु एवं अतःकरणेन ईश्वर की उच्च एवं उत्तम न्यामतों में से पुष्टि पा

* देखो बंगल "आदर्श संस्कारक दयानन्द,,
पृष्ट ६—१०

ीवन के उच्च उद्देशों के गहरे सिद्धान्तों पर विचार करके उन को लभाया—जिन सिद्धान्तों का लोहा कि अफ़लातून आदि के अनुयियों ने भी माना—तो मैं कहूँगा कि वह पवित्र देश आर्यावर्त्त ा है।"

इसके अतिरिक्त अध्यापक "हेरन" कहते हैं कि आर्यावर्त्त एक ोत है जहां से न केवल एशिया के तमाम देशों बल्कि समस्त श्चिमी संसार ने भी विद्याएं प्राप्त की हैं,,

राय महाशय कहते हैं "इन-पश्चिमी लोगों को बहुत बुरा मालूम ता है यदि इनको यह, स्वीकारना पड़े कि पश्चिम विद्या सम्बन्धी ायों में भारत का ऋणी है। इसीलिए ये लोग व्यर्थ प्रयत्न करते कि वास्तविक ऐतिहासिक घटनाओं को अन्यथा रीति से वर्णन ें।"*

वस्तुतः संसार भर को बाल्यावस्था से प्रौढावस्था तक पहुँचाने ली प्राचीन आर्य जाति ने जिन नियमों को निर्धारित किया था न्हीं नियमों का किसी न किसी रूप में आज भी यत्र तत्र सर्वत्र चार पाया जाता है। अस्तु—

## ह्रास।

पीछे लिखा जा चुका है कि कोई भी जाति सदा एक रस नहीं ी रहती। प्रत्येक वस्तु परिवर्तन शील है। यदि सीमातीत अवति उन्नति की भूमिका कही जाती है तो सीमातीत उन्नति को अनित का उपक्रम समझना चाहिए। कहते हैं कि किसी जाति के ब ह्रास के दिन आते हैं तब उसकी बुद्धि ज्ञान, एवं धर्म्म में विपतता आ जाती है। आर्य जाति की प्रायः यही दशा हुई है। त्रेता

---

* तहक़ीक़ात तारीख़ जिल्द २० पृष्ठ ४५

* P. C. Ray D. S. History of Hindu chemistory reface P. P. 42.

युग के अन्त अथवा महाराज रामचन्द्र के जन्म तक बल्कि इस
भी कुछ पहले तक आर्य जाति अथवा वैदिक धर्म में किसी भी
कार का वर्णनीय परिवर्त्तन नहीं हुआ। याज्ञिक पद्धतियों के प्र
चलित होने एवं तत्सम्बन्धी विनियोगों की भर मार से वेदार्थ स
झने में कठिनता अवश्य उपस्थित होने लग गई थी। किसी विशे
महान्-परिवर्त्तन के न होने का ही कदाचित् यह परिणाम हो
इस से पूर्व समय का क्रमबद्ध इतिहास भी हस्तगत न हो पाता हो
क्योंकि प्रत्येक जाति का इतिहास उसके किसी धार्मिक, नैतिक
अथवा सामाजिक महान्—चिन्तातीत—परिवर्त्तन अथवा घटना
के आधार पर आरंभ हुआ करता है किन्तु रामायण अथ
अधिक से अधिक महाराजा इक्ष्वाकु से पूर्व भारत के धार्मि
सामाजिक, अथवा नैतिक जीवन में कोई बहुत बड़ा वर्णनी
परिवर्त्तन नहीं हुआ जिसे कि ऐतिहासिक दृष्टि से वर्णनीय समझ
गया हो। सम्भवतः इसीलिए तत्कालीन इतिहास का आरंभ भी
किया गया हो।

बौद्धों[1] का कथन है कि भारतीय आर्य जाति के आरंभिक अध
पात की भूमिका वाममार्ग ने बांधी है और वर्त्तमान याज्ञिक पद्ध
तियों की नींव भी प्रायः उसी ने डाली है। उनके कथनानुसार रा
इक्ष्वाकु के समय में याज्ञिक पद्धतियों का आरंभ हुआ और राम
यण काल में वाम मार्ग ने अच्छी शक्ति उत्पन्न करली। इन्हीं पद्ध
तियों के आश्रय वाममार्ग ने अपना क्षेत्र विस्तृत करने का अवस
पाया और इस काम में बहुत कुछ सफलता भी प्राप्त की। अन्यथा
इससे पहले न तो आर्यजाति में पशु हिंसा ही होती थी, और
विषय वासनाओं की ही इतनी वृद्धि थी जितनी कि उसके ब

१ इस विषय में विशेष रूप से बौद्ध पुस्तक "ब्राह्मण धम्मिक सु
देखने की आवश्यकता है।

समय में हुई । इक्ष्वाकु पहला राजा था जो अपने लालची पथ
प्र रूप से नामी पुरोहितों का शिकार हुआ और उसने सब से
हले यज्ञ में पशु हिंसा की। बौद्धों का यह भी मत है कि वेदों में
शु हिंसा का कहीं पता नहीं चलता यह केवल उस समय के मांस
वें यज्ञ लोलुपों की चालें थीं और कि जब इक्ष्वाकु के पूछने पर
ोई मंत्र वेद में से न दिखा सके तो राजा को ठगने के लिए
नाम से कई एक नवीन श्लोक बना दिये और उनको वेद मंत्र
तला कर इक्ष्वाकु महाराज को धोखा दिया। तथाच इसी पुस्तक
एक जगह पर स्पष्ट लिखा है कि—

ते तत्त मन्त गन्थित्वा ओक्काकं समुपागमुं ।
प्रभूत धन धञ्ञोऽसि यजस्व बहुते धनम् ॥

अर्थात् उन लोगों ने कुछ मंत्र गढ़े और इक्ष्वाकु के समीप
ाकर बोले कि "धन धान्य सम्पन्न हो तुमको खूब यज्ञ करने
ाहिए, जिनमें कि पशु बलि का प्रबन्ध किया गया हो।"

प्रायः बौद्धों का मत है कि यही विचार धीरे २ जड़ पकड़ते
गे, यहां तक कि एक उच्च कुलोत्पन्न राजा रावण भी इन्हीं
चारों का शिकार हुआ और यूं भारत में शुद्ध-अहिंसक-वैदिक
र्म की नींव एक प्रकार से हिल गई जो पीछे आकर सर्वथा खोखली
गई। लेखक का ऐतिहासिक ज्ञान सर्वथा अधूरा है, इसलिए वह
तेज्ञा पूर्वक नहीं कह सकता कि बुद्ध एवं बौद्धों का कहना कहां
क सचाई के समीप पहुँचा हुआ है। किन्तु कहा जा सकता है
वाम मार्ग की नींव महाभारत से बहुत पहले पड़ चुकी थी।
दि रामायण को ध्यान पूर्वक पढ़ा जाय और उसकी मिलावटी
तों को त्याग कर वास्तविक घटनाओं पर ध्यान दिया जाय तो
यह निश्चय हुए बिना नहीं रह सकता कि वाम मार्ग की उत्पन्न
हुई रेखा के बहुत से बिन्दु तत्कालीन भारत में वर्त्तमान हो-

गये थे। हां यह ठीक है और अवश्य ठीक है कि उस समय वाम-मार्ग कोई क्रम बद्ध सम्प्रदाय नहीं बना था।

वाममार्ग की सब से पिछली शाखा "कौलसम्प्रदाय के धर्म्म पुस्तक से कुछ श्लोक यहां पर उद्धृत किये जाते हैं।" पाठक इनसे कम से कम इतना अवश्य समझ सकेंगे कि वाम मार्ग किस २ सम्बन्ध से कैसे २ देश में फैला है।

सर्वेभ्यश्चोत्तमा वेदा, वेदेभ्यो वैष्णवं परम्।
वैष्णवादुत्तमं शैवं, शैवाद्दक्षिणमुत्तमम्।
दक्षिणादुत्तमं वामं, वामात्सिद्धान्तमुत्तमम्।
सिद्धान्तादुत्तमं कौलं, कौलात्परतरं नहि। २।

कुलार्णव तंत्र २ य उल्लास।

इनका अर्थ यह है कि "वेद सब से उत्तम है, वेद से उत्तम वैष्णव है, वैष्णव से उत्तम शैव है शैव से उत्तम दक्षिण है, दक्षिण से वाम, वाम से सिद्धान्त, और सिद्धान्त मतसे उत्तम हमारा कौल मत है, कौल से उत्तम कुछ नहीं।"

कौन किससे उत्तम है और कौन किससे मध्यम, इस विषय पर विचार न करते हुए भी इन श्लोकों से इतना अवश्य पता लग जाता है कि वाम मार्ग का जाल वैदिक धर्म का आश्रय लेकर किस युक्ति से फैलाया गया है। इन श्लोकों में वाम मार्ग को वेदों के पीछे पांचवां स्थान दिया गया है, किन्तु यह बात सर्वथा सत्य नहीं कही जा सकती। लेखक का इतना अवश्य विश्वास है कि वैदिक धर्म के विशुद्ध सिंहासन पर सब से पहला कांटा वाम मार्ग ने ही रक्खा है। इसके अनन्तर शैव एवं वैष्णव आदि की सृष्टि हुई चाहे शैव आदि सम्प्रदाय उसी की शाखाएं ही क्यों न हों?

## मानसिक दासता का आरंभ

वैदिक धर्म के ह्रास का आरंभिक समय वही समझना चाहि

जब कि उसकी नीव युक्ति एवं विचार वाद से हटाकर केवल मात्र विश्वास पर रक्खी गई। जिस देश और जिस जाति में तर्क को ऋषि माना गया हो, उसी देश एवं उसी जाति में तर्क तथा विचार का स्थान विश्वास वहिक अन्ध विश्वास ने ले लिया यह इस नवीन सम्प्रदाय की सफलता का मुख्य कारण हुआ और वहीं से भारत में मानसिक दासता का वीजारोपण हुआ समझना चाहिए।

मानव-मस्तिष्क में जिस समय तर्क-विचार शक्ति का ह्रास होकर विश्वास मात्र का साम्राज हेाता है, उस समय मानव जीवन में मानसिक दासता की नीव पड़ जाती है। वाम मार्ग ने मानसिक दासता का वीज वोकर अपने आपको एक प्रकार से चिरस्थायी तो कर लिया, पर उसके साथ ही आर्य जाति को सदा के लिए निकम्मा भी बना दिया। मानसिक दासता के साम्राज्य में विधिनिषेध में कोई अन्तर नहीं रहा करता है, वहिक धर्म अधर्म में परिवर्तित होकर इसके सर्वथा विपरीत भाव उत्पन्न हो जाते हैं।

## वैष्णव आदि मत

वाम-मार्ग ने विश्वासवाद के नाम से जिस मानसिक दासता का वीजारोपण किया था, शैवादि मतों ने जो कि वस्तुतः उसी के अन्तर थे उन्नति पाकर उक्त दासता को पुष्ट किया और अपनी सफलता का एक मार्ग बनाया।

## चारवाक

चार वाक आदि दो एक मत इसी का विरोध करने के लिए खड़े हुए थे, पर मानव जीवन में घुसी हुई मानसिक दासता के भाव कम न हुए। अन्तको ये नवीने सम्प्रदाय भी उसी के शिकार

होकर उसके ही प्रचारक बन गये, और यूं धीरे २ इस दासता ने समस्त भारत देश एवं आर्य-जाति को घेर लिया। कुछ दिन पश्चात् यही दासता विश्वास के नाम से पुकारी जाने लगी और इसने धर्मवाद में प्रविष्ट होकर इतना बल पालिया कि भारत का लगभग सारे का सारा धर्मवाद रूढ़िवाद में बदल गया। इसका परिणाम यह हुआ कि जितने भी शान्ति एवं विज्ञान रूप देवता थे वे सब व्यक्ति विशेष माने जाने लगे प्रत्येक प्रकार की रूढ़ि वेदों के सिर मढ़ी जाने लगी प्रत्येक बात को वेद से सिद्ध किया जाने लगा। वेद में यदि किसी रूढ़िग्रस्त शब्द का प्रयोग भी पागया तो बस वहरूढ़ि सिद्ध होगई। वेदमें "मंगल" शब्द के आतेही "मंगलग्रह" की पूजा चलगई और वेद में "शन्न" शब्द के मिलते ही "शनि" का मंत्र मिलगया। इसप्रकार वेद के शब्द मात्र के आधार पर बरसाती कीड़ों की भांति हज़ारों देवों, देवियों, व्रतों एवं मतों का आविष्कार हो गया।

आर्य-जाति के हृदयों में वेदके लिए जो भाव थे। जो स्थान थे उनसे इतना अनुचित लाभ उठाया गया कि वेद स्वयं सर्वतोभावेन नाम लेने मात्र के साक्षी रह गये, शेष सब का सब धर्मवाद रूढ़िवाद के अधिकार में आगया। शैव एवं शाक्तादि मत सब एक ही थैली के बाट हैं और शिव शक्ति का पूजन भी सम्भूय रूप से ही होता है, यह बात पाठकों को ध्यान में रखनी चाहिए।

इस रूढ़िवाद को वेदों के सिर मंढ़ने से वेद एवं वैदिक धर्म्म का जितना अनादर और अपमान हुआ है, उस तमाम का उत्तर भार इन्हीं शैवादि मतों पर है, जो अपने आपको शुद्ध वैदिक कहने में रत्ती भर भी संकोच करने को तैयार नहीं हैं। उदाहरण के लिए एक बात का ही यहां पर उल्लेख कर देना पर्याप्त होगा। इससे

किसी भी ऐतिहासिक सज्जन को इन्कार न होगा कि वेदों पर प्रकट आक्षेप करके प्रत्यक्ष अपमान सब से पहले चारवाक मत प्रचारक "बृहस्पति" ने किया है। तथाच उसने लिखा है कि:—

अग्निहोत्रं त्रयोवेदास्त्रिदण्डं भस्म गुण्ठनम् ।
बुद्धि पौरुष हीनानां जीविकेति बृहस्पति । १ ।
पशुश्चेन्निहतः स्वर्गं ज्योतिष्टोमे गमिष्यति ।
स्वपिता यजमानेन तत्र कस्मान्न हिंस्यते । २ ।
ततश्च जीवनो पायो ब्राह्मणैर्विहितास्त्विह ।
मृतानां प्रेत कार्याणि नत्वन्यद्विद्यते क्वचित् । ३ ।
अश्वस्यात्राहि शिश्नन्तु पत्नीग्राह्यं प्रकीर्त्तितम् ।
भण्डैस्तद्वत्परं चैव ग्राह्य जातं प्रकीर्त्तितम् । ४ ।
मांसानां खादनं तद्वत् निशाचर समीरितम् । ५ ।
त्रयोवेदस्य कर्त्तारो भण्ड धूर्त्त निशाचराः ।
जर्फरी तुर्फरीत्यादि पण्डितानां वचः स्मृतम् । ६ ॥

अर्थात्:—बृहस्पति के मत में अग्नि होत्र, तीनों वेद, त्रिदण्ड धारण शैवादि का भस्मधारण; यह सब बुद्धि एवं पुरुषार्थ हीन लोगों की जीविका मात्र है। १। यदि पशु, मारने से वह पशु स्वर्ग में चला जाय तो यज्ञों में पशु हिंसा करने वाला यजमान उसी स्वर्ग में भेजने के लिए अपने पिता को ही क्यों नहीं मारकर स्वर्ग में पहुँचा देता। २।

इससे जान पड़ता है कि यह जीवन का उपाय है जो ब्राह्मणों ने रचा है, अर्थात् मृतकों के प्रेत कार्य आदि। क्योंकि अन्यत्र कहीं भी इनका विधान नहीं देखा जाता है। ४।

घोड़े के लिंगेन्द्रिय को पत्नी द्वारा ग्राह्म मानना, इत्यादि सब भण्डों की करतूतें हैं विद्वानों की नहीं। ४।

एवं मांस आदि का निशाचरी भोजन भी इन्हीं की कृपाका फल है। ५।

वेदों के बनाने वाले तीनों भण्ड, धूर्त, एवं निशाचर थे और वेदों में आये हुए जर्फरी इत्यादि शब्द भी इन्हीं पण्डितों के कल्पित वाक्य हैं। ६।

सृण्येव जर्भरी तुर्फरीतू नैतोशेव तुर्फरी पर्फरीका।
उदन्यजेव जेमना मदेरू तामे जराय्वजरं मरायु।

ऋग्वे० मं० १० सू० १०६ मं० ६

पाठक! जर्भरी एवं तुर्फरी आदि शब्दों को इसी ऋग्वेद से लेकर खण्डन किया गया और वेदों की खिल्ली उड़ाई गई है। यदि वेदों के नाम से रूढ़िवाद को धर्म का रूप न दिया जाता, यदि वेद के नाम से भारत के धर्म्म मन्दिरों को सूनागृह (Slaugts hanse) बनाने का उद्योग न किया जाता, यदि देवताओं के नाम से पितरों के नाम से प्रजा जनों के लूटने का प्रयत्न न किया जाता; तो शायद बृहस्पति को वेदों के विषय में इतना अपमान जनक साहस न होता। उपर्युक्त श्लोकों से अन्यान्य बातों के साथ २ इस बात का भी पता लगता है कि तत्कालीन पुरोहित नाम धारियों ने जितनी भी कल्पित बातों का प्रचार करना चाहा था उन्हें वेदों के नाम से ही प्रसिद्ध किया होगा, और आश्चर्य नहीं कि किन्हीं कपोल कल्पित पुस्तकों का नाम भी वेद ही प्रसिद्ध कर रक्खा हो। अस्तु। यद्यपि बृहस्पति प्रचालित चारवाक मतने वाम मार्ग आदि का खण्डन करके उसे अनुचित एवं हानि कारक सिद्ध करने की कोशिश अवश्य की है, पर वह उसे मिटा नहीं सका। बल्कि चारवाक ने बाह्य रूप का सुधार करके तर्कवाद द्वारा एक प्रकार से क्रमगत Systwatiç बना दिया। जिस प्रकार लंगड़े की हंसी करते हुए उसके हाथ में लठिया दे कर उसे चलने फिरने योग्य बना दिया

जाता है, यही वस्तुतः क्रिया रूप से चार्वाक ने अवैदिक वाम मार्ग के साथ किया। इतना ही नहीं बल्कि यूं कहना चाहिए कि वाम-मार्ग वेद के नाम से किन्तु वेद एवं ईश्वर से कुछ २ भय करता हुआ जिस भ्रष्ट मार्ग का अनुसरण कर रहा था, चार्वाक ने उसके सिर पर से वेद और ईश्वर का भय हटा कर अपने सर्वथा स्वतन्त्र कर दिया।

## बौद्ध-जैन

बौद्ध एवं जैन ये दोनो एक ही नदी की दो धाराएं हैं और चार्वाक का ही अवान्तर रूप हैं। महात्मा बुद्ध के समय में चार्वाक यद्यपि शाखा प्रशाखा रूप से बहुत विस्तृत हो चुका था पर वह जिस मानसिक दासता के फैलाने वाले वाम मार्ग के विरोध में खड़ा हुआ था उसे विजय न कर सका, बल्कि स्वयं विजित हो कर प्रकारान्तर से उसी का सुधारक अथवा अनुयायी बन कर रह गया।

वैसे तो महात्मा बुद्ध का जन्मोद्देश भी मानसिक दासता एवं उच्छृङ्खल वाम मार्ग को उठा देने के लिए वर्णन किया जाता है, और इसमें सन्देह नहीं कि बुद्ध को इस विषय में बहुत कुछ सफलता भी प्राप्त हुई थी, पर वेदादि सत्य शास्त्र का आश्रय न लेने—आर्य जाति के सर्वतंत्र सिद्धान्त रूप वेद का त्याग कर देने,—एवं ईश्वर—वाद को पीछे कर देने से अन्त को उनका स्थापित या प्रचालित किया हुआ आन्दोलन भी उसी गढ़े में जा गिरा जिसमेंसे कि महात्मा बुद्ध ने भारत भर को निकालने का उद्योग किया था।

महात्मा बुद्ध से पूर्व यद्यपि शाक्तादि मतों का प्रचार खूब हो चुका था, और चार्वाकादि भी उसी के प्रकारान्तर से अनुगत बन गये थे, पर अभी अवतार वाद एवं प्रतिमा पूजन आदि पौराणिक पद्धतियों का पैर पसारा नहीं हुआ था। किन्तु बुद्ध के चेलों ने

उसके—वास्तविक रूप एवं उद्देश को न समझ कर न केवल चार वाकादि मत की स्थापित हुई नास्तिक वाद की नीव को ही दृढ़ कर दिया, बल्कि स्वयं बुद्ध को विलक्षण शक्तियों का बना अथवा मान कर अवतार वाद एवं मन्दिर निर्माण आदि द्वारा गुरुडम का भर पूर प्रचार किया बौद्धों के प्राचीन चैत्यों एवं स्तूपों के भली भांति निरीक्षण करने से पता लग जाता है कि बुद्ध के मरने के पीछे किस प्रकार से मूर्त्ति पूजनादि पौराणिक पद्धतियों का क्रम विकास हुआ।

इन तमाम बातों का परिणाम यह हुआ कि जिस मानसिक दासता ने वाम मार्ग की कृपा से भारतको बहुत दिनों से घेर रक्खा था और जिससे मुक्ति दिलाना ही महात्मा बुद्ध का मुख्य उद्देश था, वह और भी दृढ़ होगई और पहले से अधिक भयानक रूप रख कर भारत के प्राचीन—विशुद्ध—वैदिक धर्म—वाद की नीव को खोखला करने लगी।

इसमें सन्देह नहीं कि महात्मा बुद्ध ने "केवल कृत, दृश्य, और उद्दिष्ट" हिंसा वाद के विरुद्ध घोर आन्दोलन किया, प्रकारान्तर से अष्टांग योग की भी शिक्षा दी और उस समय के उत्पन्न हुए हुए जन्मवाद का[1] भी उचित रीति से खण्डन किया।

---

१ बौद्ध पुस्तकों के देखने से प्रतीत होता है कि उस समय जन्मसे वर्ण मानने की प्रथा चलचुकी थी। इसलिए बुद्ध को उसका प्रतिवाद करना पड़ा। तथाच "वासेट्ठसुत्त" में उनका कथन इस प्रकार है:—

नकेसेहि न सीसेन, न कण्णेहि न अक्खीहि।
न मुखे हि न नासाय, न ओट्ठेहि भमूहि वा।

किन्तु इतना होने पर भी वेदों की उपेक्षा करने मांसादि का पूर्ण निषेध न करने, एवं केवल कर्मवाद पर बल देते हुए विचार वाद का त्याग कर देने आदि कारणों से उसके शिष्यवर्ग ने आस्तिक बनने के स्थान नास्तिकता स्वीकार की, अहिंसक बनने के स्थान हिंसावाद ग्रहण किया, और इसके साथ ही अवतार वाद आदि नाना कुसंस्कारों के प्रचारक बने।

## शंकराचार्य और अद्वैतवाद

महात्मा बुद्ध के मरने और उसके शिष्यवर्ग के नवीन आविष्कारों ने भारत में बहुत कुछ नवीन विचारों के फैलाने का काम किया। विशेष कर बौद्ध धर्म के रूपान्तर होने से नास्तिक वाद ने उत्पन्न हो कर भारत के बहुत से अच्छे २ मस्तिष्कों को हिला दिया। किन्तु भारत-वर्ष और आर्य्य जाति अपने में सचमुच एक विलक्षणता रखते हैं। इसकी वह विलक्षणता है आस्तिकवाद।

---

लिंग जाति मयं नेव, यथा अञ्ञासु जातिसु ॥ १ ॥
योहि कोचि मनुस्सेसु गोरक्खं उपजीवति ।
एवं वासेट्ठ जानाहि. कस्सको सोन ब्राह्मणो ॥ ३ ॥
योहि कोहि मनुस्सेसु इस्सत्थं उपजीवति ।
एवं वासेट्ठ जानाहि योधा जीवो न ब्राह्मणो ॥ ४ ॥
न चाहं ब्राह्मणं ब्रूमि योनिजं मत्ति सम्भवं ।
भोवादि नाम सोहोति स वे होति स किंचनो ।
आकिंचनं अनादानं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणो ॥ ५ ॥

अर्थात्:—बालों में, सिर में, कानों में, आखों में, मुँह पर; नासिका पर, भौहों पर, अथवा ओठों पर ऐसा कोई चिन्ह नहीं है जिस से कि किसी अन्यान्य जाति विशेष का पता लगाया जा सके। १–२ मनुष्यों में यदि कोई गो रक्षा से उपजीवन करता है

# आस्तिकवाद और वेदोपयोगिता

भारत के प्राचीन ऐतिहासिक साहित्य के मथन करने से प्रत्येक मनुष्य इस परिणाम पर पहुँचता है कि नास्तिकवाद भारत-वर्ष और आर्य जाति में कोई स्थान नहीं पा सकता और कि आर्य-जाति के धर्म-शास्त्र में नास्तिकता एक बहुत बड़ा अपराध माना जाता है।

यही कारण है कि बौद्धकाल के बढ़े हुए नास्तिक वाद ने भारत और आर्य जाति में एक प्रकार का घोर आन्दोलन मचा दिया। और स्वामी शङ्कराचार्य्य ने इस आन्दोलन का नेता बन कर इसे और भी विस्तृत कर दिया। पाठकों को यह जान कर बड़ा ही आश्चर्य होगा कि स्वामी शंकराचार्य्य और उस का सम्प्रदाय प्रत्यक्ष में तो बुद्ध और बौद्ध धर्म का सिर तोड़ खण्डन करता है पर वास्तव में अपने जीवन और स्वरूप का आधार भी उसे ही बनाता है। हमतो विश्वास पूर्वक यह कहने को तैयार हैं कि शङ्कर मत यद्यपि बौद्ध मत का अपवाद रूप है, किन्तु वास्तव में बौद्धमत का ही रूपान्तर है। बुद्ध ने एक स्थल पर कहा है कि:—

ब्रह्मभूतो अतितुलो, मारसेनप्पमद्दनो।
सब्बा मित्ते वसी करत्वा मोदामि अकुतो भयो ॥१॥
सब्बाभिभू सब्ब विदो हमस्मि, सब्बेसु धम्मेसु अनुपलित्तो।
सब्बंजयो तनक्खमो विमुत्तो सयं अभिञ्ञाय कमुद्दिसेय्य ॥ २॥

---

तो उसे कृषक समझो न कि ब्राह्मण ॥ ३ ॥ मनुष्यों में यदि कोई शस्त्राजीवी है तो उसे योधा—क्षत्रिय समझो न कि ब्राह्मण ॥ ४॥ मैं किसी को जन्म मात्र से ब्राह्मण नहीं मानता हूं वह नाम मात्र का ब्राह्मण है, मैं पारमार्थिक विषय वासनाओं से रहित अकिंचन एवं अनादानो-दान मात्र से जीविका न करने वाले को ही ब्राह्मण मानता हूं ॥ ५ ॥

अर्थात्:—मैं ब्रह्मस्वरूप, अतितुल मार की सेना का अप मर्दन किये हुए सब को वश करके निर्भय होकर आनन्द करता हूं ॥ २ ॥ सबका अभिभव करने वाला, सर्व वित हूं, सब धर्म्मों से अलिप्त हूं सबको जीत कर तृष्णा आदि का भी क्षय कर चुका हूं। सर्व कुछ मैंने स्वयं जाना है किसका नाम लूं जिससे कि मैंने कुछ सीखा हो ॥ २ ॥

पाठक ! क्या आप विचार पूर्वक कह सकते हैं कि बुद्ध के उपर्युक्त विचारों और शङ्कराचार्य्य के मूल-भूत सिद्धान्त के आकार भूत विचारों में कितना अन्तर है? क्या दोनों के मूल सिद्धान्त एक ही स्रोत की दो धाराएं अथवा एक ही वृक्ष की दो शाखाएं नहीं हैं? । शाखा ही क्यों बल्कि दोनों एक ही वस्तु के रूपान्तर मात्र हैं ! इसके अतिरिक्त स्वामी शङ्कराचार्य संसार को अनित्य मानता है किन्तु बुद्ध और बौद्ध धर्म शंकरस्वामी से बढ़ कर संसार की अनित्यता की घोषणा करता है

> न गाम धम्मो न निगमस्स धम्मो न चापि यं एक कुलस्स धम्मो।
> सब्बस्स लोकस्स सदेवकस्स, एसेव धम्मो यदिदं अनिच्चता ।

न ग्राम धर्म्म, न निगमधर्म; और न कोई कुल धर्म्म ही हैं तमाम देवों सहित समस्त संसार का एक ही धर्म है और वह अनित्यता है।

कहिये, संसार की अनित्यता के विषय में इससे अधिक शङ्कर स्वामी ने कौन सा नवीन अविष्कार किया है ?

शंकर स्वामी का ब्रह्मवाद, त्यागवाद, सन्यासवाद और अनित्यता वादादि सब कुछ-सर्वांग-बुद्ध और बौद्ध-धर्म का अनुकरण मात्र होने पर भी बुद्ध एवं बौद्ध-धर्म की अपेक्षा शङ्कर और शङ्कर को आर्यजाति ने [illegible] इसीलिए शंकर स्वामी

1921

का वेदोपयोगितावाद था। बुद्ध और बौद्ध-धर्म ने वेदोपयोगितावाद की उपेक्षा की शंकर स्वामी ने इस बात को प्रधानता दी। यही कारण था कि प्रेरित होकर आर्य्य जाति ने बौद्ध-धर्म के बाह्य जीवन में उपयोगी होने पर भी उसे धकेल कर शंकर एवं शंकरवाद को अपनाया। इससे यह बात भली भाँति समझी जा सकती है कि वेद को आर्य-जाति ने किस दृढ़ता से ग्रहण कर रक्खा था।

## कर्मवाद

इस में सन्देह नहीं कि महात्मा बुद्ध ने कर्मवाद पर बल देकर आर्य्यजाति के बाह्य जीवन में उस समय बहुत कुछ परिवर्त्तन कर दिया था। पर ज्ञान वाद की उपेक्षा करके जैसे उसने नास्तिक वाद का बीज बोया, ठीक उसी प्रकारसे ज्ञान वाद पर बल देते हुए कर्म वाद का खण्डन करके शंकर स्वामी ने भी प्रकारान्तर से नास्तिक वाद की ही नींव डाली। जिस प्रकार तत्त्वतः बौद्ध-धर्म ने ईश्वर वाद से इन्कार किया है, उसी प्रकार शंकराचार्य्य ने जीवन तत्त्व स्वरूप से इन्कार किया है, कर्म और ज्ञान न तो वास्तव में भिन्न रूप थे और न होने ही चाहिए थे। ये वस्तुतः एक ही नदी रूप जीवन के दो किनारे थे, जिन्हें बुद्ध और शंकर ने पृथक् पृथक् करके भारत के मूलोद्देश का एक प्रकार से अपकार ही किया है। किन्तु इतना होने और करने पर भी इन दोनों महानुभावों को किसी प्रकार की स्थायी सफलता प्राप्त न हुई।

हमें यह बात सर्वतोभावेन स्वीकार है कि जब बौद्ध धर्म के प्रचार से भारत व्याप्त होरहा था, जब वेद-वाद को बौद्ध-धर्म की ओर से घृणित सिद्ध किया जारहा था, जब वैदिक धर्म को एक

कार का बहुत बड़ा धक्का लग चुका था; उस समय शंकर स्वामी की अलौकिक तर्क-शक्ति, अवर्णनीय प्रतिभा से वैदिक धर्म का कई अंशों में उपकार हुआ। पर जो लहर शंकर स्वामी ने चलाई थी, जो बाद शंकर स्वामी ने खड़ा किया था, वह वैदिक धर्म्म और आर्य्य-जाति के लिए पथ्य अथवा हितकर सिद्ध न हुआ, बल्कि एक दूसरे नास्तिक वाद का कारण बन गया। कुछ भी हो शंकर मत के वर्त्तमान स्वरूप को बौद्ध-धर्म्म का ही रूपान्तर समझना चाहिए।

वर्त्तमान पौराणिक धर्म्म वस्तुतः बौद्ध, जैन एवं शंकर मत का ही सम्भूय परिणाम है। जैसे बौद्धों के कथनानुसार शाक्यों ने वेदों के नाम से कल्पित श्लोक और ग्रन्थ रचे, ऐसे ही इस मत ने व्यासादि के नाम से पुस्तकों के पुस्तक रच डाले। किन्तु इतना होने पर भी पुराण रचना में अधिक भाग जैन मत ने ही लिया है। बौद्धों और जैनियों ने ही सबसे पहले पुराण रचने की नीव डाली। उनकी देखा देखी हिन्दुओं ने भी इसी का अनुकरण किया। बल्कि कई एक तो जैनियों से ही उधार लेकर अपने बना लिये।

इस प्रकार धीरे २ मानसिक दासता के फल स्वरूप मतों की भारत में वृद्धि होने लगी, पर वह रोग-जिसकी निवृत्ति के लिए ही प्रत्यक्ष में इन मतों ने जन्म लिया था-दिन प्रति दिन बढ़ता ही चला गया। उधर भारत में मतवाद की आँधी चल रही थी और उधर दूसरे देशों में भी-जहां पर कि सरस्वती देवी का प्रकोप था -अशिक्षित और पशु चराने वाले लोग भी ऐसी ही अन्धाधुन्धी से लाभ उठाकर मानसिक दासता के सहारे अपना मतलब साधते हुए मतों की खेती बो रहे थे।

## इसलाम

एक ओर भारत में बौद्ध, शंकर, शैव, चारवाक, वैष्णव, जैन,

शाक्त, वाम, दक्षिण, एव सिद्धान्त आदि नाना मतों की खिचड़ी पक
रही थी; उधर दूसरी ओर विक्रमादित्य की सातवीं शताब्दी
अरब के जंगली और मरु प्रदेश में मुहम्मद साहिब कुछ न जान
हुए भी यहूद और निसारा आदि मतों की कतर ब्योंत कर
अपने अनुकूल बनाते हुए एक नवीन मत की स्थापना की धु
में लग रहे थे। संसार में तीन प्रकार के नेता पाये जाते हैं। १-
जिनमें नेता बनने के वे तमाम गुण विद्यमान हों जिनकी कि प
नेता में आवश्यकता होती है। ऐसे मनुष्ययदि स्वयं भी नेता
बनना चाहते हों और प्रजा भी न चाहती हो पर उनके गुण उ
स्वतः नेता का रूप देकर सम्मानित करा देते हैं। २-रे वे हैं जो ने
बनने के गुण तो नहीं रखते, पर उनका अनुयायी वर्ग अपने अन
विश्वास के कारण उन्हें नेता की पदवी दे देता है और धीरे
वे पूरे नेता मान लिये जाते हैं। ३-रे नेता वे होते हैं जो प्रजाओं
न चाहते हुए भी अपनी शक्ति एवं बल का प्रयोग करके आ
आपको नेता बनवाने या मनवाने का प्रबन्ध करते हैं और सफल
प्राप्त करते हुए अन्त को नेता बन जाते हैं। हज़रत मुहम्मद इ
नेताओं में से एक थे जिन्होंने अपनी तलवार और जन बल
अपने आपको नेता बनाया है।

चालीस वर्ष की आयु तक आपका और ईश्वर का कोई विश
परिचय न था। ४० वें वर्ष में ईश्वर ने आपको एक
रसालत का पट्टा देकर अपना पैगम्बर बनाया और त
से आपने अपने आपको रसूल-नबी-आदि नामों से प्रकट क
आरम्भ किया। पर जिन लोगों के साथ आपकी ४० वर्ष
आयु व्यतीत हुई थी, जो समवयस्क होने के कारण नीच ऊच
जानते थे, उन्हें आपकी रसालत पर विश्वास कैसे आ सकता थ
उन्होंने विरोध आरंभ किया। यह विरोध जब अपनी सीमा से

हर हो गया तब आपको मक्का छोड़ मदीना जाना या भागना
ड़ा। सावन सुदी ३ संवत् ६७६ वि० शुक्रवार को आपने मक्का
ाग मदीने पहुंच अपना आसन जमाया। यही वह दिन था जिसे
सलमान लोग हिजर की रात बतलाते हैं और इसी दिन से
सलमानों का सन् हिजरी प्रारंभ हुआ।

मदीना में छः वर्ष रहने के अनन्तर अर्थात् हिजरी सन् ६ में आपने
ास राजाओं को मुसलमानी मत में प्रविष्ट होने के लिए आमंत्रण
या। १ ईरान का राजा "खुसरो" यह ज़रतोश्ती मत का मानने
ाला अग्नि होत्री था २ रूम का राजा "हाँकल" यह ईसाई था।
हबश का राजा "नज्जाशी" यह भी ईसाई था। ४ यमन का
ाट।

सन् ११ हिजरी में मुहम्मद साहिब की मृत्यु हो गई मगर अपने
ोते जी अपने मतको फैलाने के लिए जब बुद्धि बल से काम न
कल सका तब तलवार चलाना आरंभ करके कई एक मुँह कर
ये थे। इनके मरने पर "अबु ,बफ़" ख़लीफ़ा बना मगर दो ही
ल बाद वह मारा गया और "उम्र ख़लीफ़ा नियत हुआ। सन्
३ हिजरी में राजा जयमाल ने मकरान ( बिलूचिस्तान ) नामी
ान्त अरब के एक "मुग़ीरा" नामी अफ़सर को दे दिया। तब से
लूचिस्तान पर मुसलमानी प्रभाव बढ़ने लगा और अन्त को वह
र्वांश मुसलमान हो गया।

इस प्रकार वह मत धीरे २ नैतिक रूप धारण करके अरब में
लने लगा। अरब में मुहम्मद साहिब के बहुत से मित्र बन चुके थे
न्हें कि अपने शत्रुओं से किसी न किसी रूप में बदला लेने, धन
माने, प्रतिष्ठा प्राप्त करने, और उच्चासन पाने की लालसा ने घेर
खा था वे सब आपके साथी हो गये, और यूं इनकी सहायता
महम्मद साहिब का अरब में मत चल गया। इस मत के फैलने

का पूर्ण वृतान्त पंडित लेखराम जी के "रिसाला जिहाद" आ
पुस्तकों में सविस्तर वर्णन किया गया है जिन्हें अपने २ स्थान प
पाठक पढ़ सकेंगे

यह मत यतः किसी विद्या विज्ञान सम्पन्न देश में उत्प
नहीं हुआ था और इस के संस्थापक एवं संचालक ही वि
आदि गुणों से कोई सम्बन्ध रखते थे, इस लिए इसका प
परिणाम यह भी हुआ जो होना ही था कि मुसलमानी म
के धार्मिक वा नैतिक प्रचारक जहां भी गये विद्या के पु
शत्रु सिद्ध हुए । अतएव इस मत के अगुओं को जहां जहां
पुस्तक भण्डार प्राप्त हुआ या पता लगा वहीं वहीं उसे अ
देवता की भेंट किया गया। इन लोगों को यह भी विश्वा
था कि कुरान के बाद कोई पुस्तक आसमान से न उतरेगी औ
उसके बिना बाक़ी तमाम पुस्तकें रद्द की जा चुकी हैं इस लिए इ
पुस्तकों को संसार में बने रहने का भी अधिकार नहीं रहा है। अ
एव ये सब उठ जानी चाहिएं। परन्तु वास्तव में बात दूसरी थ
और वह यह कि अन्यान्य विद्या विज्ञान सम्बन्धी पुस्तकों औ
विचारों की विद्यमानता में कुरान की विद्या शून्य शिक्षाओं प
विश्वास क्या विचार करना भी असम्भव था। यही सोच क
मुसलमानी मत प्रचारकों ने विद्या का विरोध करना उचि
समझा।

यद्यपि धीरे २ यह मत समस्त संसार में फैल निकला, यहां त
कि इस समय संसार भर में मुसलमानों की संख्या ६५००००००
पैंतालीस करोड़ के लग भग पायी जाती है। पर पाठक यह जा
कर विचार कर सकेंगे कि मुसलमानी मत प्रचारकों ने न तो कभ
विद्या बुद्धि से काम लिया और न कभी उसके अगुओं ने अप

वन से कोई ऐसा उदाहरण उपस्थित किया जिसे कि भारत जैसा था विज्ञान सम्पन्न देश अपने लिए आदर्श बना सकता।

इस मत के धार्मिक अथवा साम्प्रदायिक सिद्धान्त मुहम्मद-ाहिब और उनके अन्तरंग मित्रों के विचारों का समुदाय मात्र है। ी विचार आयतों के नाम से ईश्वरीय ज्ञान की भांति प्रकट किये ये और इनके संग्रह को बाद में कुरान के नाम से पुकारा गया। ुरान में "ग़यासुल्लुग़ात" के कथनानुसार सब मिलाकर ६६६६ ायतें और ३० सिपारे हैं। कहते हैं कि पहले यह कुरान ४० पारों ा था जिसमें से अन्तिम १० पारों को मुसलमानों ने अपने अनु-ूल न पाकर निकाल दिया। यह ४० पारे का कुरान अब भी ांकीपुर पटने में एक प्रसिद्ध मुसलमान के पुस्तकालय में-जिसे ह पण्डित लेखराम जी ने अपने नेत्रों से देखा और उसमें से कुछ द्धरण भी लिये थे—विद्यमान है।

इस मत का सारभूत सिद्धान्त यह है कि:—एकेश्वर वाद पर श्वास करते हुए मुहम्मद की रसालत पर विश्वास करना अर्थात् पने ईश्वर के मध्य में मुहम्मद को मध्यस्थ स्वीकार करना। स्वर्ग पहुंचने के लिए मुहम्मद साहिब की सिफ़ारिश अत्यावश्यक है, सके बिना न तो कोई स्वर्ग पा सकता है और न ईश्वर स्वर्ग दे सकता है। क़यामत (प्रलय) के दिन जब लेखा होगा तब ईश्वर और उसके परम प्रिय मुहम्मद पर विश्वास रखने वाले एक ओर और अविश्वासी दूसरी ओर खड़े किये जायेंगे। इन में से खुदा और मुहम्मद पर विश्वास रखने वाले स्वर्ग में पहुंचाये जायेंगे जहां पर कि अप्सराओं ग़िलमानों और शराब की नहरों आदि की कमी न होगी। एक २ मोमन को सत्तर बहत्तर हूरें तक होंगी और संसार की अन्यान्य भोग विलास भी प्राप्त होंगे दूसरे अवि-श्वासी लोग गन्धक से जलते हुए नरक में धकेले जायेंगे जहां पर

कि उन्हें सदा के लिए दुःख उठाना होगा। खुदा एक है उसका कोई साथी या शरीक नहीं है किन्तु उसके साथ रसूल की रसालत ( मध्यस्थता ) पर विश्वास अवश्य लाना होगा।

जीव और प्रकृति पैदा किये हुए हैं—नित्य नहीं, पृथिवी एक चपटी सी चटाई है जो पानियों पर बिछाई गई है और उसे दृढ़ रखने के लिए पर्वतों के खूंटे गाड़ दिये गये हैं। सूर्य एक कीचड़ के चश्मे से निकलता है और चांद एक ढेला सा है जिसके मुहम्मद साहिब ने एक बार दो टुकड़े भी किये थे। स्त्री जाति एक खेती के समान है जिसे जिस प्रकार चाहें काम में लायें कुरान ईश्वरीय ज्ञान का पुस्तक है उसे छोड़ और कोई किताब माननीय नहीं है। इत्यादि ?

प्रत्येक मुसलमान को मुसलमान बनने अथवा कहलाने के लिए इन निम्न छः नियमों का मानना अत्यावश्यक है, इनके माने बिना कोई मुसलमान न तो मुसलमान कहला सकता है और न हो सकता है।

(१) इज़रत मुहम्मद की ज़ात को अनिवार्य रूप से साथ रख कर एकेश्वर भक्ति अथवा कलमा।

( २ ) पांच समय की नमाज़।

(३) मक्के आदि की यात्रा अथवा हज्ज।

(४) ज़कात अथवा दान पुण्य।

(५) रोज़ा अथवा उपवास।

(६) क़रबानी अथवा बलिदान।

## भारत में आगमन

तमाम अरब, बिलूचिस्तान, ईरान आदि देशों में मुसलमान राजाओं ने अपने मत के प्रचार में जो सफलता प्राप्त की थी, उसके

इन्हें यह उचित या अनुचित अभिमान अवश्य होगया था। वे समझने लग गये थे कि हमारा मत न केवल सच्चा ही है अपितु विश्वव्यापक होने योग्य भी है। इसी लालसा और ख़लीफ़ों के भोगविलासों को पूरा करने की इच्छा से भी ७ वीं शताब्दी के अन्त और ८वीं शताब्दी के आरंभ में मुसलमान वणिकों ने वसुन्धरा के भोगविलास की भूमि भारत में पदार्पण किया था। मीरक़ासिम के सिन्धु पर आक्रमण करने से भारत में मुसलमानों को अधिक अवकाश मिला और पांव जमाने के कुछ २ साधन भी प्राप्त हो गये। उस के बाद १० और ११वीं शताब्दी में महमूद ग़ज़नवी आदि की चेष्टा से भारत में मुसलमानो नैतिक शक्ति की प्रतिष्ठा हुई। इस मनुष्य ने कोई १७ वार भारत पर आक्रमण किया और जो कुछ भी लूट खसोट कर सका करके अपने देश को चला जाता रहा। सोमनाथ का विख्यात मन्दिर और वहां की मूर्त्ति दोनों ही इस की कृपा से धूलि में मिल गये। इसने ईरान से भारत के उत्तर-पश्चिम पंजाब तक अपना राज्य बढ़ाया। इस के प्रायः दोसौ वर्ष बाद सन् ११९३ ई० में मुहम्मद गौरी ने भारत की प्रसिद्ध राजधानी दिल्ली में मुसल्मानी शासन की स्थापना की, और तबसे लेकर सन् १८५७ के सिपाही विद्रोह (ग़दर) तक अधिकांश भारत मुसलमानों के शासनाधीन बना रहा।

इसमें सन्देह नहीं कि मुसलमान सम्प्रदाय ने शृंखलाबद्ध विजयाभियान द्वारा अपने साम्राज्य को बहुत शीघ्र विस्तृत करने में सफलता कीथी। अबूबक्र के राजत्व काल में "ख़ालिद" ने समस्त "सिरिया" और मिसोपुटामिया को तथा उम्र के प्रधान सेना नायक "अमरु इन-अैस" ने समग्र मिश्र को अरब के आधीन कर दिया।

पाठक! यह जानकर आपको भी आश्चर्य्य होगा कि जिस

सम्प्रदाय ने जन्म दिन से लेके दो तीन सौ वर्ष में यूरोप के एक बहुत बड़े भाग को मिश्र बना लिया था वह भारत वर्ष में लग भग साढ़े छः सौ वर्ष तक राज्य शासन करके भी भारत को सम्भूय रू से मुसलमान न बना सका। जिस सम्प्रदाय की तलवार ने तमाम अरब को ग्रस लिया जिसने रोम का सिर झुका दिया, जो अफ़ग़ा निस्तान और बिलूचिस्तान मुसलमान बनाने में सफल हुई, जिसने मिश्र और फ़ारिस जैसे समृद्ध देशों पर अपना सिक्का जमाया जिसने एक से लेकर पैंतालीस करोड़ को भयभीत किया: वह भारत में अपनी सारी शक्ति लगा कर भी, साढ़े छः सौ वर्ष अपनी चमक दमक दिखा कर भी भारत भर को मुसलमान न बना सकी कुन्द होकर रह गई बल्कि निकम्मी होकर गिर पड़ी। पानी पत निवासी मौलाना "हाली" ने इसी गिरावट को देख कर ही कहा है कि:—

वोह दीन हिजाज़ी का बे बाक बेड़ा,
निशां जिसका उक़साये आलम में पहुँचा।

मज़ाहम हुआ कोई ख़तरा न जिसका,
न उम्मां में उटका न कुलज़म में झिझका।

किये पै सिपर जिसने सातों समुन्दर,
वोह डूबा दहाने में गंगा के आकर।

अध्यापक मैक्समुलर ने भी अपने (India what cauit teach us नामी पुस्तक में आश्चर्य करते हुए यह बात लिखी है कि "जब मैं उन तमाम भयानक अत्याचारों पर दृष्टि डालता हूं—जो कि मुस लमानों ने हिन्दुओं पर रवा रक्खे थे—तो मैं हैरान हो जाता हूं कि ऐसे नारकी लोगों के आधीन रहकर हिन्दू स्वयं भी शैतान क्यों न बन गये. और उनमें इतनी सच्चाई दियानतदारी—जो कि अब तक

वर्त्तमान है-ऐसे अत्याचारियों के शासन में क्यों कर बाक़ी रह गई"।

## कारण

मुसलमानों की साम्प्रदायिक तलवार भारत में साढ़े छः सौ वर्ष तक शक्ति दिखाकर अन्त को टूट गई। उसका भारत के धर्म-वाद पर कोई प्रभाव न पड़ा। बल्कि अध्यापक मैक्समुलर के कथनानुसार भारत शैतान भी न बना। इत्यादि तमाम बातों का कारण क्या है; इस प्रश्न का उत्तर अपनी ओर से कुछ न देकर दूसरों की साक्षी मात्र लिख देना पर्याप्त होगा।

( १ ) "इतिहास इस बात का साक्षी है कि बहुत सी जातियें जो इस समय अपना सिर ऊंचा किये हुए हैं-कहीं की न होतीं यदि वे प्राचीन आर्यों के दिमाग़ी ख़ज़ाने में से बहुत मिक़दार में क़र्ज़ न लेतीं"

( History Aryan medicine )

( २ ) "भारत में अमानत में ख़यानत के मुक़द्दमात नहीं होते"
( यूनान का प्रसिद्धयात्री मैगिस्थिनीज़ )

( ३ ) "हिन्दू इस क़दर दियानत दार थे कि लोगों को अपने मकानों में ताला लगाने की ज़रूरत नहीं पड़ती थी"
[ मुहम्मद इकबाल की तारीख़ हिन्द पृष्ट ५२ )

( ४ ) "वस्तुतः भारत का आयुर्वेद ही आजकल के आयुर्वेद की नीव है" ( " )

( ५ ) "और क़ौमों के मुक़ाबले में हिन्दुओं में दार्शनिक सिद्धान्तों की खोज सब से पहले आरंभ हुई थी, इस जातिकी तबियत ही कुछ ऐसी संगठित हुई है कि सोच विचार और दार्शनिक विचारों की अधिक रुचि रखती हैं ( " )

( ६ ) "आर्य लोग एक ईश्वर की उपासना करते थे। [" ]

( ७ ) "यहां का क़ानून बताता है कि भारत में कोई भी किसी भी हालत में ग़ुलाम नहीं बनाया जा सकता"

( मैगस्थिनीज़ )

( = ) "यहां पर परदेसियों के लिए भी निरीक्षक नियत होते हैं और उनका काम केवल यह देखना होता है कि किसी परदेसी पर किसी प्रकार का अन्याय या अत्याचार तो नहीं होता है।"

( ९ ) "वैदिक साहित्य के अध्ययन से हमको ऐसा मालूम होता है कि हम तमाम मनुष्य-जाति का अध्ययन कर रहे हैं" ( अध्यापक मैक्समुलर India what can it teach-)

[१०] "यदि मुझसे कोई पूछे कि पृथिवी भर में वह कौन सा देश है कि जो धन एवं आनन्द वरन नैसर्गिक दृश्यों से मालामाल है और बाज़ हिस्सों में स्वर्ग का नमूना है तो मैं आर्यावर्त्त की ओर अंगुली उठाऊंगा। यदि मुझसे कोई पूछे कि पृथिवी के किस भाग पर सब से पहले उच्च कक्षा के ज्ञान का प्रकाश हुआ और मानव बुद्धि एवं अन्तःकरण ने ईश्वर के उत्तम एवं उच्च उपकारों-अनुग्रहों में से पुष्टि पाई, जीवन के उच्च उद्देश्यों के गहरे सिद्धान्तों पर विचार करके सुलझा दिया जिन सिद्धान्तों का लोहा कि अफ़लातून और कान्ती के अनुयायी भी मानते हैं, तो मैं कहूंगा कि वह पवित्र देश भारतवर्ष ही है ( " )

[११] आर्यावर्त्त एक ऐसा स्रोत है कि जहां से न केवल एशिया के तमाम देशों ने बल्कितमाम पश्चिमी संसार ने भी सब

प्रकार की विद्याएं प्राप्त की हैं" [ प्रोफ़ेसर हेरन, तहक़ीक़ात तारीख़ जिल्द२ पृष्ठ ४५ ]

[१२] "भारत विद्या और शिल्प की अपेक्षा से मिश्र से भी ऊंचा है, प्राचीन समय में विद्या और शिल्प इस प्रकार फैले कि पहले भारत में प्रकट हुए, अनन्तर भारत से मिश्र में गये मिश्र तथा भारत से फ़ारिस में, फ़ारिस से यूनान में, यूनान से रोम में, रोम तथा यूनान से अरब में; और अरब रोम एवं यूनान से यूरोप में"

[ सनीतुल इसलाम—उर्दू—पृष्ठ १ छापा लाहौर ]

[१३] "हिसाब में भी मुसल्मानों ने कम ध्याय नहीं दिया। उन्होंने हिन्दुओं से अंक गणना का ब्योरा सीखा और इसी लिए इसका नाम "अअ़दादि हिन्दसा" रक्खा आयुर्वेद में भी मुसल्मानों ने बहुत उन्नति की। उन्होंने हिन्दुस्तान में यात्रा की, संस्कृत भाषा सीखी, और संस्कृत भाषा के प्रसिद्ध पुस्तक—जिनका नाम चरक और सुश्रुत है—अरबी भाषामें अनुवाद किया। सबसे पहले सन् १५६ हिजरी में "मूसाबिन मूसुल क़रारी" ने संस्कृत का अनुवाद आरंभ किया। अनन्तर "मुहम्मद बिन अस्मईल" स्वयं भारत वर्ष में आया और हिन्दुओं के विद्या विज्ञान सम्बन्धी पुस्तकों का अरबी में अनुवाद किया, ।( सर सय्यद अहमद—तहज़ीबुल अख़लाक़ भाग ४ )

( १४ ) हमारे पुरुषाओं का दूसरी जातियों से विद्याएं सीखना और मुसलमानों में फैलाना इतिहास से स्पष्ट सिद्ध है"

( १५ ) यूनान और भारत वर्ष से प्रत्येक प्रकार की विद्या को मुसलमानों ने सीखा और यह उन्नति सन् ६०० हिजरी तक बराबर रही पर फिर यह जाति एक उछाले हुए पत्थर की भाँति नीचे को चली आई

( १६ ) बग़दाद के ख़लीफ़ों के समय में जितनी विद्याएं अरबमें आईं वह सब यूनान से अनुवाद की गईं और उस समय के प्रायः यूनानी विद्वानों को—जो काफ़िरों की भाषा थी-प्राप्त किया जाता था। यदि ऐसा न होता तो जितना भी तिब हमारे हां वर्त्तमान है कुछ न होता और दर्शन आदि तो कुछ भी न होता,, ( तहज़ीबुल अख़लाक़ भाग २ खण्ड ७ )

( १७ ) "भारत वर्ष का दार्शनिक इतिहास वस्तुतः सारे संसार का दार्शनिक इतिहास है,, ( मिस्टर कर्न-बाइबिल इन इण्डिया )

( १८ ) "यूनान का एक बहुत बड़ा दार्शनिक इस बात का अनुमोदन करता है संसार में तमाम विद्याएं आर्यावर्त्त से पहुँचीं,, ( तारीख़ वैद्यक पृष्ठ ३३ )

( १९ ) "यूरोप के जहालत ( अन्धकार ) से निकल कर प्रकाश आने का कारण आर्यावर्त्त की शिक्षा है,, ( पृष्ठ ३३ )

(२०) "ईरान के मन्दिरों के चिन्ह ऐसे पाये जाते हैं कि जिससे यह मालूम होता है कि प्राचीन समय में यहां का धर्म भारत वर्ष के अनुकूल था" ( जुगराफिया-आलम पृष्ठ १५ छापा सन् १८६४

( २१ ) "हिन्दू -धर्म के तत्व और स्वरूप को समझने के लिए सब से प्रथम हमारी दृष्टि ऋग्वेद पर ही पड़ती है क्योंकि संसार भर में प्राचीनता की दृष्टि से इससे प्राचीन और कोई पुस्तक नहीं है। मानो लेखन कला के प्रकाश में आने वाले युग का यह एक ही प्राचीन पुस्तक है"

( हिन्दू धर्म छापा यजम पृष्ठ ३३ )

वाचक वृन्द ! अवतरण के पृष्ठ बढ़ रहे हैं, इसलिए इस विषय को इससे अधिक विस्तृत न करते हुए इतने में ही बता देना उचित होगा कि जिस भारत ने समस्त संसार को विद्या प्रदान की, जिस भारत ने सबसे पहले धार्मिक विचारों का प्रकाश फैलाया, जिस भारत का

धर्म पुस्तक संसार भर में सबसे प्राचीन हो, जिस भारत ने यूनान-रोम और स्वयं अरब तक को विद्या एवं शिल्प आदि सिखाये हों, जिस भारत में आ आकर अरब के विद्वानों ने शिक्षा प्राप्त की हो, जो भारत विद्या-शिल्पधर्म्म—साहित्य आदि की दृष्टि से अरब के गुरु यूनान का भी गुरु रहा हो।; वह अपने साक्षात् एवं परंपरा सम्बन्ध से शिष्यों का शिष्य नहीं हो सकता था।

भारत भर को मुसलमान बनाने के लिए यह सम्प्रदाय एक छोटी सी—किन्तु मुहम्मद की ज़ात को साथ रखते हुए—एकेश्वर-वाद की तूती लेकर अरब से बड़ी सजधज के साथ चला था और यही इसके पास धर्म वाद का एक ब्रह्मास्त्र था परन्तु भारत वर्ष के वेदान्त और ब्रह्मवाद के प्रति घर के नक्कार ख़ाने में उसकी भी वही दशा हुई जो एक तूती की होनी चाहिए थी।

जब इतने पर भी इसको भारत में सफलता प्राप्त न हुई तो इसके अनुयायी मुसलमान विजेताओं ने अपनी वास्तविक विज्ञता का परिचय देने के लिए एक ओर तो प्रचीन पुस्तकों और पुस्तकालयों से हम्माम गर्म करने आरंभ किये और दूसरी ओर हिन्दू या वैदिक धर्म के विरुद्ध पुस्तकें लिखनी आरंभ कीं। पुस्तकों और पुस्तकालयों को अग्नि देवता की भेट करने से मुसलमानों को बहुत कुछ सफलता प्राप्त हुई और भारत का बहुत सा विद्या भण्डार विलुप्त हो गया जो इस मत के उद्देशानुकूल ही हुआ। इस देश में एक कहावत है और वह यह कि " यदि खेलेंगे नहीं तो खेलने नहीं देंगे, भारतीय विद्या क्षेत्र में मुसलमान राजाओं ने सचमुच यही किया है यदि वे विद्या वृद्धि नहीं कर सके तो दूसरों की भी क्यों रहने दें इसी नियम का अनुकरण करते हुए, भारत के पुस्तकों से छः महीने चूल्हे गर्म किये गये हैं। अस्तु। अन्त को ईश्वर ने भारत पर दया की, भारत की

सदियों से गले पड़ी अवनतिका अन्त हुआ और महारानी विक्टोरिया की छत्र छाया में आते ही अपनी विद्या बुद्धि में पुनः उन्नति करने में प्रवृत्त हुआ। बृटिश छत्र छाया में अते ही भारत को धार्मिक स्वतंत्रता प्राप्त हुई, उसके अतीत गौरव की यत्र तत्र सर्वत्र खोज होने लगी, और उस खोज के परिणामों को सुरक्षित होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

ऐसी दशा में मुसलमान विद्वानों के पास और कोई साधन न था कि वे अपने मत की असफलता पर पर्दा डालते हुए हिन्दू धर्म, और वेदों को कोसने लगे। तथाच यही कार्य आरंभ किया गया और थोड़े समय में दर्जनों ऐसी पुस्तकें लिख डालीं जिन में वेद और वैदिक धर्म तथा हिन्दू पुरुषाओं को बुरा भला सिद्ध करके अपने मन की भड़ास निकाली गई।

## स्वामी दयानन्द और उनका काम

भारत में धार्मिक आन्दोलन किसी न किसी रूप में सदा से होता रहा है और सदा होता रहेगा। इस धार्मिक आन्दोलन में जब २ भी अनौचित्य की मात्रा बढ़ी है जब भी धर्म की मौलिकता पर आघात हुआ, और जब २ धर्म का वास्तविक स्वरूप तिरोहित होने को हुआ है, तब २ ही ईश्वरीय प्रेरणा से इस अनौचित्य को मिटाने के लिए मौलिकता एवं स्वरूप को स्थिर रखने के लिए सदा कोई न कोई जीवन अपने आपको न्योछावर करता रहा है। स्वामी दयानन्द उन्हीं धार्मिक नेताओं में से एक था। स्वामी दयानन्द से पहले भारत की क्या दशा थी और वह किन २ कठोर एवं काँटेदार मैशीनों में से निकल रहा था। इसक संक्षिप्त वर्णन ऊपर के पृष्ठों में किया गया है। पौराणिक मिथ्यावाद, व्यापारियों ने जहां आर्य-धर्म को भीतर से खोखला कर

रक्खा था वहां बाहर से ईसाई एवं मुहम्मदी आदि मतों ने भीमात्रातीत कांटे बिछा रक्खे थे। हिन्दू धर्म के पुरोहितवाद ने हिन्दूजाति को विद्या शून्य रख कर जहां धार्मिक और सामाजिक अत्याचारों पर व्यास आदि मुनियों की मोहरें लगा कर सच्चा सिद्ध कर रक्खा था, वहां मुहम्मदी आदि मतों ने भी हिन्दू जाति का शिकार करने के चारों ओर बड़ी सावधानी से बिछा रक्खे थे। प्रत्येक हिन्दू को जहां यह निश्चय होरहा था कि कोई हिन्दू एक बार हिन्दू पन से पृथक होकर पुनः हिन्दूवाद में नहीं आसकता, वहां मुसलमानों का भी यह विश्वास करने के लिए पूरा अवसर था कि उचितानुचित रूप से जैसे भी कोई हिन्दू इधर को सरक आया वह सोलह आना और सदाके लिए हमारा ही है। किन्तु

## परिवर्त्तन

इन्होंने बहुत दिनों तक लोहे की तलवार से काम लिया। जब उसे निकम्मा होते देखा और उसके चलाने की शक्ति भी क्षीण होने लगी, तब अन्यान्य साधनों से काम लेना आरंभ किया। जब और कोई साधन न रहा तब लेखनी की बारी आई और लेखनी द्वारा आर्य्य जाति को कोसना प्रारंभ कियागया। लेखनी द्वारा वैदिक धर्म पर प्रति दिन आक्रमण होने लगा। आज कितने वर्ष हुए जबकि मुसलमानों के प्रतिदिन के आक्रमणों से तंग आकर हिन्दुओं के दिलों में उनके उत्तर देने के तरंग उठ रहे थे।

कुछ दिनों तक ये तरंग सामान्य तरंग ही बने रहे, पर अन्त को इन तरंगों ने अमली काम आरंभ किया। दिवंगत मुन्शी इन्द्र मणि की लेखनी से इन्द्र वज्र आदि ने निकल कर सचमुच इन्द्रवज्र का सा काम आरंभ किया। विरोधी सम्प्रदाय समझ तो गया कि हिन्दू मत अभी सर्वथा मर नहीं गया, पर इतने पर उसने अपने काम को बन्द

नहीं किया। शायद उसने समझा था कि यह काम यहीं समाप्त होजायगा, पर ऐसा न हुआ। स्वामी दयानन्द के आन्दोलन ने इसे एक विशेष शील प्रदान की मुसलमानी कैम्प में एक प्रकार की हलचल सी मचगई।

आर्य्यवीर लेखराम की लेखनी और मौखिक व्याख्यानों ने इस हलचल को और भी सहायता दी। अब यह आन्दोलन सजीव हो उठा और इस के परिणाम भी दिखाई देने लगे। यद्यपि पं० लेखराम ने मुसलमानों पर अपनी ओर से न तो कोई आक्रमण ही किया और न कोई पुस्तक हो लिखी थी। बल्कि उनकी लेखनी जब भी चली तब मुसलमानों की लेखनी के उत्तर एवं आत्मरक्षा में चली। तथाच लेखराम की लेखनी चलने से पूर्व मुसलमानों की ओर से रद्दे हिन्द, तोहफ़ातुलहिन्द, अहजाज़िमुहमदी, लइज़तुलहिन्द, आदि पुस्तकें लेखराम के कार्य्यारंभ से बहुत पहले लिखी जा चुकी थीं, जिन के उत्तर में मुन्शी इन्द्रमणिजी ने तोहफ़ातुल इसलाम, हमलये हिन्द, सुमसामि हिन्द एवं इन्द्रवज्र आदि पुस्तकें लिखीं किन्तु जब मुसलमानों को इतना उत्तर पा कर भी सन्तोष न हुआ और उनके धार्मिक आवेश ने आगे बढ़ने पर विवश किया तब उन्हों ने साक्षात् आर्य समाज और स्वामी दयानन्द पर लेखनी द्वारा आघात पहुँचाने आरंभ किये। पहले २ अन्यान्य मुसलमान इस युद्ध में प्रवृत्त हुए थे पर इस अन्तिम उद्योग में क़ादियां जिला गुरुदासपुर के एक विशेष सम्प्रदाय के नेता गुलाम अहमद साहिब कूदे और अपने बुराहीनि अहमदिया, सुरमाचश्मि आर्य पतराज़ात, चाररिसाला, वेद मुक़द्दस की हक़ीक़त, आदि पुस्तकें लिख डालीं। इस के अतिरिक्त मिरज़ा साहिब की देखा देखी मसल इजिहाद, हुज्जतुल हिन्द, अहमनिज़ात आर्य खिलअत इस लाम, आदि पुस्तकें अन्यान्य मुसलमानों ने भी लिखीं। इनतमाम के

उत्तर में ही लेख राम का लेखनी लगी और ऐसी लगी कि मुसलमानों के कलम टूटने लगे और अन्त को जब और कुछ वस न चला तब उसी पुराने स्वभाव से काम लिया गया। और पंडित लेखराम पर लोहे की छुरी चला कर अपने धर्म कार्यों पर उससे अन्तिम मोहर लगवाई गई। किन्तु अब वह बात नहीं रही—अब बहुत कुछ अन्तर पड़ गया है। जिन दिनों स्वामी दयानन्द ने अपना काम आरंभ किया था उस समय कोई नहीं जानता था कि स्वामी दयानन्द का आन्दोलन संसार के धार्मिक इतिहास में इतनी बड़ी क्रान्ति के उत्पन्न करके वाला होगा। किन्तु स्वामी दयानन्द के निःसीम परिश्रम और कार्यक्रम ने जो क्रान्ति उत्पन्न की उसके परिणाम बड़े गहरे निकले और सर्वत्र दिखाई देने लगे। स्वामी दयानन्द और पंडित लेखराम के इस आन्दोलन ने केवल हिन्दूवाद पर ही अपना प्रभाव दिखाया हो यह बात नहीं, बल्कि उसका प्रभाव और बड़ा गहरा प्रभाव इसलाम जैसे अन्यान्य कट्टर मतों पर भी पड़ा और उसने सन्तोष जनक परिणाम उत्पन्न किये।

## स्वामी दयानन्द के अन्दोलन का इसलाम पर प्रभाव

आज से ५० वर्ष पूर्व मुसलमानों को पूर्ण विश्वास था कि उनका मत सर्वांग पूर्ण और अकाट्य है, किसी का साहस नहीं होसकता कि उनके धार्मिक नियमों की ओर अंगुली भी उठा सके। किन्तु वेही नियम जिनको कि मुहम्मद साहिबने यहूद एवं निसारा आदि मतों की कतरव्योंत करके प्रचलित किया था-आज स्वामी दयानन्द एवं लेखराम आदि के घोर आन्दोलन से मुसलमानों को स्वयं अपूर्ण

मालूम होने लगे और बहुत से सत्यग्राही मुसलमानों ने उन में परि वर्त्तन करना उचित समझा। इस परिवर्त्तन को मुसलमान भी अनु भव करने लगे हैं। तथाच मौलवी "मुहम्मद इमामुद्दीन" शेरकोट इस परिवर्त्त का वर्णन करते हुए अपनी "अल्हामह इ-आख़रुज़्ज़मान" नामी छोटे पुस्तक में लिखते हैं कि:—

"यह वोह पुर आशोब (अशु पूर्ण) ज़माना है कि जिसके दि में ज़रा भी इसलाम का दर्द होगा वह इसलाम की नाज़ुक हाल पर आठ २ आंसू बहाये बिना नहीं रह सकता। एक ज़माना था कि मुसलमानों के तमाम काम दीन की हिदायत के मुताबिक़ पूरे हो थे, इसके बिरुद्ध चलने का कोई नाम तक न लेता था और इनको मिस्ल तरक्क़ी का राज़ इसी पाबन्दी में छिपाथा। मगर एक अ हमारा ज़माना है कि जो काम दीनी निगाह से देखे जाने के क़ाबिल हैं और ख़ालिस दीनी हैसियत रखते हैं उन में भी उसूल दीनी क़ाम नहीं लिया जाता" (पृष्ठ २-३) बहुत से मुसलमानों ने बहुत स हदीसों को अप्रामाणिक मान लिया है, कइयों ने तो तमाम हदीस को ही प्रमाण कोटि से गिराकर केवल कुरान को ही बाक़ी रक्खा और कुछ २ सर्वांश कुरान को भी मानने से इन्कार करने लगे हैं अभी थोड़े ही वर्ष हुए हैं कि मुसलमानों में "फ़िदव तुलउलमा अथवा "नदव तुलउलमा" नाम की एक संस्थास्थापित हुई है यह सर्वथा धार्मिक शिक्षा के लिये ही स्थापित की ग हैं। इस के प्रमुखों में से एक का नाम" अलामा शिबली है आपने कई एक पुस्तकें लिखी हैं जो उक्त संस्था की ओर से प्रकाशित हुई। उन में से एक का नाम "अलकलाम" है। इस अवतरण में इसी पुस्तक के दो चार उद्धरण देकर यह बतलाना उचित होगा कि मुसलमानों में किस वेग से सिद्धान्त परिवर्त्तन हो रहा है।

(१) इस बिना पर आलम को हादिस कहना सूरत के एत-बार से सहीह है लेकिन मादा के लिहाज़ से सहीह नहीं है। जब आलम का हदूससाबित नहीं तब दस्तदलाल (युक्ति) भी सहीह नहीं। इस बिनापर यह दावा करना कि आलम के लिए कोई इल्लत ज़रूरी है सहीह नहीं। क्योंकि आलम मादा का नाम है और मादा का हादिस और मख़लूक़ (कार्य्य) होना साबित नहीं हुआ"
(पृष्ठ ३०

(२) यह अमर क़तई है कि कोई शै अदम महज़ से वजूद में नहीं आसकती इस बिना पर आलम (सृष्टि) का माद। क़दीम (अनादि) है" (पृष्ठ ४४)

(३) "तरक्क़ी का सिल सिला ख़ुद इन्सान की ज़ात में क़ायम है यहां तक कि क़वाये अक़्लिया, सफ़ाई ए बातन और पाकीज़ा ख़ूबी में तरक्क़ी करते २ इन्सान मलकूतियत (देवता पन) की हद-तक पहुंच जाता है यही मर्तबा है जिसको हम नबूवत और रसा-लत से तअ़बीर (उपमा) करते हैं"
(पृष्ठ १४२-१४३)

(४) आलम में अलल व असबाब (कार्य्य कारण) का सिल सिला जारी है यानी जो चीज़ वजूद में आती है उसके अलल वअसबाब होते हैं और जब किसी शै के अलल व असबाब मौजूद होते हैं तो ज़रूर उस शै का वजूद होता है। अब मोअ़जज़ा (करामात—चमत्कार) की अगर यह तारीफ़ है कि इल्लतवमअ़लूल (कार्य्य कारण) के सिलसिला के ख़िलाफ़ वक़ूह में आये तो मोअ़जज़ा बातिला होगा" (पृष्ठ ६६) प्रथम और दो में प्रकृति को अनादि एवं नित्य स्वीकार किया गया है। तीसरे में हज़रत मुहम्मद की रसालत आदि से प्रकारान्तर से इन्कार है। और चौथे में तमाम ऐसे चमत्कारों से इन्कार किया गया है जिन्हें कार्य्य कारण

के कम विरुद्ध मुहम्मद द्वारा दिखाया जाना प्रसिद्ध किया जाता है।

आर्य्य समाज के लगातार आन्दोलन से मुसल्मानी मत में जो उधेड़ बुन होनी आरंभ हुई है वह धीरे २ अपना रंग दिखाये बिना न रहेगी। यदि आर्य्य समाज शान्ति एवं गम्भीरता से अपना काम करता गया तो संसार देखेगा कि आर्य्य समाज का नेता स्वामी दयानन्द किस सचाई को लेकर धर्म्म क्षेत्र में अवतीर्ण हुआ था उसे संसार ने समझा और उस से भरसक लाभ उठाने का प्रयत्न किया। ओ३म् शम्

अनुभवानन्द "शान्त"

ओ३म्

# धर्मवीर पं० लेखरामजी

का

## संक्षिप्त जीवन चरित्

### उपक्रम।

प्रत्येक जाति की सभ्यता, उन्नति, एवं अभिवृद्धि उसके पूर्व पुरुषों के आत्मोत्सर्ग पर निर्भर है। जिस जाति में धर्मवीरों की संख्या, सदाचार की मात्रा, साहित्य की उन्नति, नैतिक शक्ति, विचार एवं आत्मरक्षा आदि जितनी भी अधिक और सर्वाङ्ग होगी, उस जाति की उन्नति और सभ्यता उतनी ही अधिक समझनी चाहिए। जो जाति दार्शनिक विद्वानों, नैतिक एवं धार्मिक वीरों, सदाचार सम्पन्न जीवनों को उत्पन्न नहीं करती अथवा नहीं कर सकती उस जाति को प्रकृति और कालचक्र की मैशीन अपनी चालकी वेगवती—तीक्ष्ण धार से काट—कुचल—कर डाल देने और सर्वथा मिटा देने के लिए अपने ही नियमानुसार सदा तैयार किन्तु विवश रहती है।

ऐतिहासिक विद्वानों का कथन है कि जातीय इतिहास सदा

रहा पुरुषों के जीवनों के रक्त से लिखा जाया करता है जिन लोगोंने अपनी जाति की रक्षा में अपने जीवन और प्राणों की आहुती दी है वे ही जातीय मन्दिर के मुख्य शिलाधार हुए हैं इसमें संदेह नहीं। पर जिन वीरों ने अपने धर्म की रक्षा के लिए अपने जीवनों को, अपनी हड्डियों को, स्वाहा किया है वे, वे लोग हुए हैं जिनकी धर्म-निष्ठा ने उनके विचारों के फैलाने में बिजली का सा काम किया है।

किसी भी नैतिक अथवा धार्मिक जाति के जीवन का अनुमान उसके आत्मोत्सर्ग से भली भांति किया जा सकता है। नैतिक समाजों की अपेक्षा धार्मिक समुदायों की पांव २ पर परीक्षाएँ हुआ करती हैं। संसार का धार्मिक इतिहास इस बात की मुक्त कण्ठ से साक्षी देता है कि जब कभी भी कोई ऐसी नवीन उत्तेजना खड़ी हुई है जिसका कि उस समय संसार को अत्यन्त आवश्यकता थी, तो पुराने धार्मिक ठेकेदारों में एक दम ऐसी खलबली मच गई कि मानों किसी ने घाव पर कई असर कारक दवा लगादी हो,ो और वे एक दम हाथ पैर धोकर उसके मिटा डालने—कुचल डालने के लिए प्राण पण से लग गये हैं। ऐसे समयों पर यदि वह उत्तेजना सत्य की नीव रखती है, यदि उसमें सच्चाई की उचित मात्रा वर्तमान है, यदि उसकी आधार शिला किसी वास्तविक—सत्य-सिद्धान्त पर रक्खी गई है, यदि उसमें देश एवं जाति का हित हो सकता है, यदि वह देश एवं जाति की पूर्व प्रकृति के अनुसार कार्य करती है; तो उनके अनुयायियों में से बहुत से ऐसे धर्मवीर कार्य क्षेत्र में अवतीर्ण होगये हैं जिन्होंने अपने धर्म की रक्षा में, अपने धर्म के प्रचार में, अपने आपको सर्वथा मिटा दिया है। प्रत्येक जीवित धार्मिक जाति ने इसी प्रकार के बलिदानों से अपनी जीवन्त सत्ता को प्रमाणित करने की कोशिश की है।

सच तो यह है कि प्रत्येक नैतिक एवं धार्मिक आन्दोलन की

नींव नैतिक तथा धार्मिक वीरों की हड्डियों पर ही रक्खी जाया करत है। जितना भी किसी आन्दोलन को चुटियाया जायगा, जितना भ सताया जायगा, जितना भी उसे दबाने का प्रयत्न किया जायग और जितना भी उसका विरोध किया जायगा। उतनी ही उस दृढ़ता, आत्मरक्षा की शक्ति, सहन शीलता, एवं उत्सर्ग वृत्ति बढ़त जायगी, जो वृक्ष सामान्य पानी से पुष्ट हुए हैं, जिनको राख औ मिट्टी का खाद मिला है, उन्हें आंधी जब चाहे उखाड़ कर फें सकती है; पर जिन धर्म वृक्षों को उनके मालियों ने अपने ताज़े खू से सींचा है, अपनी हड्डियों के खाद से पुष्ट किया है, उन्हें संसार व विरुद्ध वायु की झङ्कारें अथवा साम्प्रदायिक ठेकेदारों के दिये हु धक्के एक इञ्च भी इधर से उधर नहीं कर सकते।

धन्य है वह जाति, धन्य है वह समाज, जिसके पुत्रों एवं सेवक को अपने निश्चित सिद्धान्तों और सच्चाइयों को अपने रक्त व मोहर से सिद्ध करने का अवसर प्राप्त होता है। आर्य्य जाति व यह अभिमान है और सच्चा एवं गौरवान्वित अभिमान कि उसने ऐसे भी बहुत से पुत्र रत्नों को उत्पन्न किया है। जिन्होंने दस २ एवं पन्द्रह २ वर्ष की आयु में अपने धर्म व रक्षा के लिए तलवार नहीं चलाई किन्तु विरोधियों की तेज़ तलवा को अपनी कोमल गर्दनों पर लेकर अपने आशा पूर्ण जीवन क उत्सर्ग करते हुए इस बात की साक्षी दी है कि:—

अनित्यानि शरीराणि विभवो नैव शाश्वतः।
नित्यं सन्निहितो मृत्युः कर्त्तव्यो धर्म संग्रहः॥

सच तो यह है कि जो जाति चारों ओर से आपद् ग्रस्त होने प भी आत्मोत्सर्ग करनेवाले वीरों को उत्पन्न कर सकी है, जो जाति सैकड़ों वर्ष विदेशियों, विजातियों, एवं विधर्मियों के पावों तले रौंदी

ाने पर भी धर्म रक्षा एवं आत्मोत्सर्ग के भावों को त्याग नहीं सकी
ौर जिस जाति के छोटे २ पुत्र रक्त धर्मवीरों ने अपने कोमल एवं
ाशा पूर्ण जीवन का उत्सर्ग करके भी धर्म त्याग की कुभावनाओं
ो अपने मनोमन्दिरों में घुसने नहीं दिया; उस गौरवान्वित
ाति को मिटने एवं मरने का कभी भी भय न रखना चाहिए।
ह नहीं मिट सकती और उसे कोई नहीं मिटा सकता।

आर्यावर्त्त एवं आर्य्य जाति का अब तक सचमुच नाम और
शान तक मिट गया होता यदि इसमें प्राचीन धर्मवीरों, ऋषियों
वं मुनियों की हड्डियों की राख—एवं उसका आत्मोत्सर्ग उत्तेजक
होता इसमें सन्देह नहीं कि इस समय आर्यावर्त्त की धार्मिक
एवं जातीय फुलवाड़ी अविद्या और स्वार्थ की तेज़ लू से झुलसी जा
ुकी है॥

एतद्देश प्रसूतस्य सकाशादग्र जन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्व मानवः।

मनु० २। २०।*

ा अभिमान करने वाले नई विवाही दुलहिन की भांति अपने घर
े बाहर निकलना भी अपमान जनक एवं पाप समझ रहे हैं।
केन्तु इतना होने पर "यह उद्यान कभी नहीं हरा भरा हो सकेगा"
ैसी दुराशा नहीं की जा सकती। यद्यपि यह ऊपर से सूख चुका
और जो कोई २ शाखा हरी दिखाई देती है वह भी बनावटी है।
इसमें वास्तविकता बहुत कम है। पर इसकी जड़ों में—उन धर्म
ीरों, ऋषियों एवं मुनियों का रक्त वर्त्तमान है जिन्होंने इस देश के

* अर्थात् आर्य्यावर्त्त के विद्वानों के पास पृथिवी भर के मनुष्य आ
आकर आचार आदि की शिक्षा प्राप्त किया करें। ले०

सब देशों का शिरोमणि बना रक्खा था। जिनके ब्रह्म ज्ञान एवं विज्ञान का झण्डा दूर दूर के देशों में चमका करता था।

आज से पचास वर्ष पहले भारतीय धर्म-वैदिक धर्म के विषय में कुछ भी महत्व की बात करना लोगों ने एक प्रकार का पागलपन सा समझ रक्खा था। परन्तु स्वामी दयानन्द के वेद नाद ने देश एवं जाति को जगा दिया। सोई हुई मानसिक शक्तियों ने करवट बदली और अपना काम करने लगीं। मानसिक दासता का भंडा फोड़ हुआ और लोग स्वतन्त्रता से विचार करने लगे। सच्चाई लाखों पर्दों को चीर कर अपना आपा दिखाती है। वैदिक प्रकाश ने सहस्रों वर्षों के फैले हुए अन्धकार को छिन्न भिन्न कर दिया। देश में एक अद्भुत आन्दोलन खड़ा हुआ। विरोधियों-पुराने धर्म ध्वजियों के विरोधों एवं नीच से नीच आक्रमणों को शांति से सहन करते हुए "दयानन्द ने अपने विश्वासों-विचारों और वैदिक सच्चाइयों का प्रचार एवं प्रस्तार किया। और अन्त में आत्मिक मानसिक, जीवन के साथही शारीरिक जीवन को भी इसी काम पर न्योछावर किया।" बुद्ध को समाप्त करके विरोधियोंने समझा था कि हम सफल होगये पर ऐसा न हुआ बुद्ध के विचार संसार में अवश्य फैले। शंकर का संहार करके धर्मध्वजियों ने विश्वास कर लिया था कि शिकार मार लिया, काम बन गया, पर कुछ न बन पाया और शंकर के विचारों ने देश को घेर लिया, और वे बाहर भी फैल गये इसी प्रकार स्वामी दयानन्द को विष देकर या उसके इस प्रकार चल देने पर विरोधियों को कुछ शांति हुई होगी? चैन से सोये होंगे और समझा होगा कि शत्रु मार लिया गया, अब कोई भय नहीं रहा। परन्तु ऐसा न तो कभी हुआ है और न कभी होने की सम्भावना है। इतिहास बताता है कि जिस शक्ति का जितना भी विरोध अधिक होता है वह उतनी ही और दृढ़ होती जाती है। सच

यह है कि किसी भी आन्दोलन की शक्ति का अनुमान उसके
नुयायी वर्ग अथवा मित्र मंडल से लगाना बहुत बड़ी मूर्खता
। आन्दोलन की शक्ति का अनुमान उसके विरोधियों की–शत्रुओं
ी संख्या से लगाया जाया करता है। जिस आन्दोलन के जितने
ी अधिक विरोधी पाये जावें उतनी ही मात्रा में उसकी शक्ति अधिक
ौर दृढ़ मानी जाती है। कोई भी मस्तिष्क रखनेवाला मनुष्य किसी
पाहज से बैर नहीं किया करता। जिस मनुष्य के जितने भी
धिक शत्रु हों समझना चाहिए कि वह मनुष्य कोई शक्ति विशेष
खता है जो दबाने से दबने में नहीं आती। सिक्खों का उठाया हुआ
ान्दोलन मुसलमानों के समय में ही मिट चुका होता यदि उसके
बाने का प्रयत्न न किया जाता या उसके शत्रु खड़े न हो जाते।
द्ध के विरोधियों ने बुद्ध को जितना विस्तृत किया है उतना बौद्धों
 नहीं किया। स्वामी दयानन्द का मिशन भी सचमुच कभी का
मनामी की दशा में मिट चुका होता यदि इसके विरोधी अपनी
िरोधाग्नि से इसे फैलाने में सहायक न होते। स्वामी दयानन्द के
त्रुओं ने समझा था कि हम इसकी समाप्ति के साथ २ स्वामी
यानन्द के उठाये हुए आन्दोलन का भी अन्त कर देंगे। पर
ेसा होना न था न ऐसा कभी हुआ और न हो ही सकता है।

स्वामी दयानन्द चला गया, अपने विचार-वैदिक विचार छोड़
या, और उन पर अपनी मौत की मोहर लगा गया। शत्रुओं ने
स मोहर को ग़लत समझा, उन्होंने उस साक्षी को अशुद्ध समझा,
ौर अपने प्रयत्नों को सफल समझा। पर ऐसा नहीं था, यह उन
ी भूल थी, और यह उनका मिथ्या अभिमान था। कर्म वीरों की
ात रक्त बीज के गुण रखती है जहां एक धर्म वीर अपनी
ाहुति देता है वहां वह अपने कई स्थानापन्न छोड़ जाता है। यही
ता स्वामी दयानन्द के पीछे आर्य समाज की हुई। स्वामी दया-

नन्द के मरते ही विरोधियों ने समझा था कि बस इस आन्दोलन की भी अन्त्येष्टि हो गई, पर ऐसा होना न था और न ऐसा हुआ उसके पीछे विद्यार्थी गुरुदत्तने उसी काम को अपने हाथ में लिया और अपने जीवन का सारा तेल इसी दीपक के उद्दीप्त करने में निचटा दिया यह एक दूसरी मोहर थी जो स्वामीदयानन्द के विचारों की सचाई पर लगाई गई। किन्तु विरोधियों को इसमें भी सन्देह हुआ उन्होंने इसे भी सामान्य समझा अन्त को इनसम्पूर्ण भ्रांतियं को मिटाने के लिए शत्रुओं को एक अटल विश्वास दिलाने के लिए ६ मार्च सन् १८९७ ख्रीष्टाब्द को दयानन्द के सच्चे सेवक, कर्मवीर प्रातः स्मरणीय, पंडित लेखराम ने एक सच्चे सोलज़र की भांति दयानन्द की प्रकट की हुई वैदिक सचाइयों पर सच मुच अपने आँतों के रक्तसे स्थायी मोहर करदी, और शत्रुओं को बता दिया कि शताब्दियों की दासता ने भी अभी तक आर्य जाति के रक्त को सर्वथा ठंडा नहीं कर दिया है। वह अभी किसी न किसी रूप में बना हुआ है और समय पड़ने पर वह उष्णता को प्राप्त हो सकता है और वह अपनी सच्ची उष्णता की परीक्षा दे सकता है। पाठक वर्ग! जिस धर्मवीर ने धन रक्षा के लिए नहीं, जन रक्षा के लिए नहीं, आत्म रक्षा के लिए नहीं, किन्तु धर्म रक्षा के लिए और वैदिक धर्म की रक्षा के लिए अपने प्राणों को न्योछावर करके इस धर्मरूपी कल्पवृक्ष को अपने रक्त से सींचा है। आज हम उसी धर्मवीर की ग्रन्थ माला को आर्य्य भाषा भाषी सज्जनों के सन्मुख आर्य भाषा में ही उपस्थित करने की तैयारियां करने लगे हैं। परन्तु इस धर्मवीर के वीरोचित धर्म विचारों को सन्मुख रखने से पूर्व हम चाहते हैं और सच्चे हृदय से चाहते हैं कि धर्मवीर की जीवनी आपके आगे रक्खें। हमें आशा ही नहीं निदान विश्वास और पत्थर की रेखा की भांति स्थायी विश्वास है कि सच्चे हृदय से, ध्यान

ले, और शुद्धान्तःकरण से लेखराम के चरित्र को—चाहे वह कितना ही संक्षिप्त क्यों न हो? पढ़ने वाला पुरुष आर्य्य धर्म के गाते गद् गद् हुए बिना नहीं रह सकता। क्योंकि:—यद्यपि धर्मवीर पंडित लेखराम को महात्मा स्वामी शंकराचार्य एवं स्वामी दयानन्द आदि के समकक्ष नहीं माना जा सकता, पर अपने माने हुए सत्य धर्म का श्वास २ में प्रचार करने वाला, अन्तिम समय तक पूरी निर्भयता से शत्रुओं के मध्य में अपने नेता के लगाये हुए धर्मवृक्ष को अपने उष्ण रक्त से सींच कर चिरस्थायी कर जाने वाला, वीर योद्धा अपने गौरव में किसी वीर से कम भी नहीं माना जा सकता है। धर्मवीर की जीवनी लिखने का वैसे तो हमें कोई अधिकार नहीं है। क्योंकि किसी भी चरित्र लेखक में तद्विषयक गुणों की आवश्यकता होती है उनमें से इस चरित्र लेखक में एक भी वैसा गुण नहीं है। यह लेखक न तो चरित्र नायक के सब गुणों से परिचित है, और नहीं इसने कभी चरित्र लिखने का कार्य ही किया है। इस चरित्र को लिखते हुए लेखक सचमुच दूसरों के घरों पर त्योहार मना रहा है, अर्थात् दूसरों की संग्रह की हुई सामग्री को ही कांट छांट करके अपने अनुकूल बना कर एक नवीन रूप दे रहा है। किन्तु लेखक को पूर्ण विश्वास है कि किसी भी धर्म रक्षक के जीवन की साधारण किंवा असाधारण घटनाओं के लिख देने मात्र की अपेक्षा उसके कार्य का विवरण, उसके भावों-विचारों का उल्लेख, एवं उसके उपदेश आदि से उत्पन्न होने वाली शिक्षाओं का वर्णन अधिक लाभ दायक हुआ करता है। इस लिए यदि हम पण्डित लेखराम के समस्त कार्य कलाप को दो चार पंक्तियों में वर्णन करना चाहें तो वह इतना ही उचित होगा कि:—" **वैदिक धर्म ही लेखराम का जीवन सर्वस्व था, यही एक केन्द्र था जिसके चारों ओर लेखराम का जीवन घूम रहा था,**

यही उसका उद्देश्य था, यही उसकी सम्पत्ति थी, और यही उसका जीवन लक्ष्य था।"

## परिचय।

आर्य्य सामाजिक मंडल में शायद ही कोई ऐसा अभागा पुरुष हो जो आर्य पथिक के नाम से सर्वथा अपरिचित हो। स्वामी दयानन्द के पीछे गुरुदत्त एवं गुरुदत्त के पीछे यदि कोई ऐसा व्यक्ति है जिसने आर्य्यसमाज की गाड़ी के चलाने में धुरे का काम दिया है, अथवा जिसने वैदिक धर्म की सचाई पर अपने ताज़े ख़ून से मोहर की है, तो वह आर्य पथिक ही एक ऐसा व्यक्ति है। वैसे तो आर्य सामाजिक साहित्यकी एक रद्दी से रद्दी भजनोपदेशक ने भी अपनी इधर उधर से चुराई हुई तुकबन्दियों द्वारा बहुत कुछ उन्नति एवं अभिवृद्धि की है, किन्तु क्षमा कीजिएगा, स्वामी दयानन्द के पश्चात् पंडित गुरुदत्त, आर्य पथिक लेखराम एवं कुछ २ पंडित कृपाराम ( स्वामी दर्शनानन्द ) की पुस्तकों को छोड़कर यदि नवीनता की दृष्टि से, सिद्धांत रक्षा की दृष्टि से, भाव भूषण की दृष्टि से, रचना शैली की दृष्टि से, खोज एवं अन्वेषण की दृष्टि से धर्म भाव की दृष्टि से, सिद्धान्त की दृष्टि से, और धर्म प्रचार की दृष्टि से, देखा जाय तो शेष सारे का सारा पुस्तक नाम धारी काग़ज़ समूह जला देने पर भी आर्यसमाज की धन हानि का विचार छोड़ अन्य कोई हानि नहीं होगी। कहते हैं कि धार्मिक लगन रखने वाले पागल हुआ करते हैं। यह बात आर्य पथिक में पूर्ण रूप से चरितार्थ होती है--

वैदिक धर्म के प्रचार में वह सचमुच पागल हो गया था, और

ऐसे पागल का जीवन धार्मिक आन्दोलन के लिए सचमुच अमृत का काम करने वाला हुआ करता है ।

---

## वंशावली ।

चरित्रनायक आर्य पथिक के पूर्व पुरखा पंजाब में पूठोहार प्रान्त के रावल पिंडी ज़िले के कहूटा नामक ग्राम में बास करते थे। रावल पिंडी इस पूठोहार प्रान्त का केन्द्र माना जाता है। लेखराम के दादा महता नारायणसिंह के पिता महता प्रधान का ज़िला झेलम तहसील चकवाल के अन्तर्गत सय्यदपुर नामी ग्राम में विवाह हुआ था। इस लिए वह अपना पैतृक ग्राम छोड़ कर ससुराल के ग्राम सय्यदपुर में ही जा रहे थे।

सय्यदपुर में ही महता नारायण सिंह सहित इनके पिता ने अपनी बोसोभूमि बनाई थी। महताजी दो भाई थे। महता महाशय के दो पुत्र उत्पन्न हुए थे, जिनमें से बड़े का नाम महता 'तारासिंह' एवं छोटे का नाम महता "गंगाराम" था। महता गंगाराम पुलिस में नौकर थे, और पेशावर में डिप्टी इन्स्पेक्टर थे। बड़े भाई महता नारायण सिंह के यहां तीन पुत्र और एक पुत्री उत्पन्न हुई थी। इन तीनों पुत्रों में से छोटे का नाम "बालकराम" मझले का नाम "तोता राम" और बड़े का नाम "लेखराम" था जो हमारे इस चरित्र के नायक है। पुत्री सबसे छोटी थी और उसका नाम "मायावती" रक्खा गया था। लेखराम पौराणिक पद्धति के अनुसार ब्राह्मण थे किन्तु सामाजिक सिद्धान्त स्वीकार कर लेने के पश्चात् उनके मुख से अपने आप को ब्राह्मण कहते हुए शायद ही किसी ने सुना हो। लेखराम का जन्म पंजाब प्रान्त की गणना के अनुसार ८ चैत्र सम्वत् १९१५ विक्रमीको शुक्र के दिन इसी सय्यदपुर ग्राम में ही हुआ था।

# बाल्यावस्था एवं शिक्षा।

पञ्जाब प्रान्त में चिरकाल से उर्दू एवं फ़ारसी लिपि का प्रचार चला आ रहा है। मुसलमानों के राजत्व काल में हिन्दू लोग भी क्या राजकीय, क्या निजी लिखने पढ़ने का प्रायः सब काम इसी लिपि में करते आ रहे हैं। पंजाब की उर्दू यद्यपि देहली एवं लखनऊ की भांति शुद्ध एवं ललित नहीं है, पर शताब्दियों से व्यवहार में आई हुई सामान्य भाषा का भी एक दम त्यागना बड़ा कठिन होता है। कुछ भी हो लेखराम को ७ वर्ष की आयु में ही उर्दू फ़ारसी पढ़ने के लिए देहाती स्कूल में भेज दिया गया। लेखराम का हृदय स्वभाव से ही धर्म परायण बना हुआ था। इस लिए फ़ारसीशिक्षा का आधिपत्य होने पर भी उनकी बाल्यावस्था सेही धर्म की ओर प्रवृत्ति अधिक थी।

धार्मिक कथा कहानियों का बहुत शीघ्र लेखराम के हृदय पर प्रभाव पड़ा करता था। इसके साथ ही बालक पन से ही लेखराम में एक और गुण पाया गया था और वह हाज़िर जवाबी का गुण था, कोई बात हो उसका जवाब देने के लिए लेखराम समय नहीं लगाया करता था।

एक बार अभी कठिनता से अक्षरों का अभ्यास ही किया था कि शिक्षा विभाग का मुख्य मुहर्रिर परीक्षा लेने को आगया, वह किसी बात में लेखराम की हाज़िर जवाबी पर इतना प्रसन्न हुआ कि उसे विशेष रूप से पारितोषिक दिया।

सम्वत् १९२६ में जब लेखराम की आयु ११ वर्ष की थी, उस समय उसके चचा महता गंडाराम जी पेशावर पुलिस में एक स्थायी पद पर नियुक्त हो गये थे। तब उन्होंने लेखराम को पेशावर में अपने पास ही बुला लिया और वहीं उसके पढ़ाने का प्रबन्ध भी किया। उन दिनों उर्दू फ़ारसी के अध्यापक प्रायः मुसलमान ही

अधिक हुआ करते थे, उन्हीं से लेखराम को पाला पड़ता था, ये लोग मुसलमान होने के कारण स्वभावतः अपने प्रत्येक विद्यार्थी में मुसलमानी संस्कार डालने की चेष्टा किया करते थे। यही ढंग इन्होंने लेखराम के साथ भी बर्ता, पर लेखराम के हृदय पर न जाने ऐसे संस्कार किस प्रकार जम गये थे कि उनकी बातों का उसके मन पर रत्ती भर भी प्रभाव न होता। हाज़िर जवाबी का गुण तो उसमें छुटपन से ही था, इस लिए उलटा वह उन्हें ऐसा तंग करता कि वे थोड़े ही दिनों में पढ़ाना छोड़ चल देते। ऐसी दशा में लेखराम को कितने ही उस्तादों के पास पढ़ने के लिए जाना पड़ा। थोड़े ही समय में उनके चचा गंडाराम पेशावर छोड़ देहाती थानों में बदल कर चले गये, अतएव हमारे चरित्र नायक को पेशावर त्याग पुनः देहाती जल वायु में प्रवेश करना पड़ा। लेख-राम अपने संकल्प एवं नियम का बाल्य काल से ही बड़ा पक्का था। जो सकल्प एक बार कर लिया उससे हटने के लिए कुछ कहो पर लेखराम पर कोई प्रभाव नहीं होता था। यही संकल्प की दृढ़ता, वैदिकधर्म की सेवा करने के लिए उसके काम आई। इस प्रकार नाना विधि मौलवियों की दृष्टि में कुछ दिन शिक्षा पाते हुए अपने चचा की संगति में कुछ काल व्यतीत करके लग भग १४ वर्ष की आयु में पुनः जन्म भूमि सय्यदपुर में आकर अपने उसी पुराने देहाती स्कूल में भरती हो गये।

उन दिनों इस स्कूल के प्रधानाध्यापक मुन्शी तुलसीदास थे जो स्वभाव के कोमल किन्तु पढ़ाने में परिश्रमी कहे जाते थे। मुन्शी तुलसी दासजी ने जो पत्र महता गंगारामजी को लिखे थे उनमें लेखा है कि "पंडित् लेखराम हँसमुख, एवं बहुत ही सरल स्वभाव के थे, लेखराम जहां लड़कपन में ही पूरा धुनी, हाज़िर जवाब, हृदय का शुद्ध, स्वभाव का सरल, पढ़ने लिखने में तेज़, कुशाग्र बुद्धि और

धर्म प्रिय था, वहां वह अपने निजी रहन सहन में कभी ध्यान नहीं दिया करता था। कुरते की घुण्डी यदि खुली है तो ध्यान नहीं, सिर के साफे का शमला यदि गले में लिपट गया है तो लिपटा रहने दो, साफ़ा यदि ढीला होकर गलेमें आगया है तो आजाने दो; किन्तु इतना होते हुए भी पढ़ने में कभी आना कानी नहीं हुई। स्मरण शक्ति का यह हाल था कि किसी उपयोगी पुस्तक के किसी भाग को या अपनी पाठ्य पुस्तकों की दैनिक पाठावली को दो एक बार के अतिरिक्त लेखराम ने अन्य लड़कों की भांति घिसा घिसी नहीं की" यह मुन्शी तुलसीदासजी के पत्रों का निष्कर्ष है।

मुन्शी तुलसी दासजी की दिन पत्रिका (Diary) देखने से लेख राम के विषय में निम्न बातें पाई जाती हैं। "आज कल लेखराम दस बजे रात्रि तक मेरी कुटिया में रहता और बहारदानिश की आवृत्ति करता है, आज्ञाकारी और होनहार बालक है, बुद्धि का बड़ा तेज़ है, इस स्कूल में वह अपना सानी नहीं रखता, स्वतन्त्रता का पुतला है, अपनी धुन का पक्का है, अपनी धुनके सामने किसी को भी कुछ नहीं समझता, कविता का शौक़ीन है। लेखराम की पुरानी कविता का कहीं २ नमूना मिलता है, पर वह अधिकतया पंजाबी भाषा में की गई है। हां उससे लेखराम के आन्तरिक भावों का भली भाँति पता लगाया जा सकता है। किसी २ कविता से पता लगता है कि लेख राम हुक़े का मानों पूरा शत्रु था। अपनी कविता में हुक़ा आदि बुराइयों का उसने ख़ूब ही खण्डन किया है। बुराइयों के खण्डन में पड़ी हुई वृत्ति ने लेखराम को बालकपन में ही निर्भीक सा बना दिया था। मुन्शी तुलसीदास ही को लेखराम का आदिम और अन्तिम गुरु या उस्ताद समझना चाहिए। मुन्शीजी से आर्य्य पथिक ने निम्नलिखित उर्दू एवं फारसी की पुस्तकें पढ़ी थीं। गुलिस्तां, क़ससई हिन्द, बोस्तां, बहार दानिश आधी से अधिक, सिकन्दर

नामा का कुछ भाग, अनवार सुहेली, शाहनामा का कुछ भाग, एवं हिसाब आदि—

किसी भी मनुष्य की मानसिक एवं धार्मिक प्रवृत्तियों का पता लगाने के लिए उसकी बाल्यावस्था की घटनायें प्रायः बहुत कुछ सहायक हुआ करती हैं। लेखराम की बाल्यावस्था सचमुच इसी प्रवृत्ति का पता देती है। ईश्वर चिन्तन और आस्तिकता की ओर लेखराम की प्रथम से ही प्रवृति थी। जिस समय आप अपने चचा के पास पेशावर में रहते थे, उस समय आप को एक धार्मिक सिक्ख सिपाही का सत्संग प्राप्त हुआ। उसकी देखा देखी आप भी ईश्वरोपासना करने लग गये। आप उनकी संगति से इतने प्रभावित हुए कि प्रति दिन प्रातः काल उठ कर समाधि लगा बैठ जाया करते और दिन को उसी सिक्ख सिपाही से गुरुमुखी में गीता पाठ किया करते। कहते हैं कि वे एक रात को अपनी खटिया पर ही समाधि लगाये बैठे थे कि अज्ञानतः उसी दशा में खाट से नीचे गिर पड़े परन्तु गिरते हुए भी उसी ध्यान में वे देखे गये।

---

## नौकरी।

आप अभी स्कूल में ही थे, अभी आप की आयु कठिनता से १५-१६ वर्ष की थी कि आपके चचा ने शिक्षा छुड़ा कर नौकर कराने की चिन्ता की, और १७ वर्ष की आयु में पेशावर पुलिस में भरती भी करा दिया।

सम्वत् १९३२ के पौष मास में ठीक १७ वर्ष एवं ८ मास की आयु में आप पुलिस में भरती हुए, पुलिस में उन दिनों वेतन अधिक नहीं मिला करता था, पर पुलिस में होने के कारण मान प्रतिष्ठा की ख़ूब प्राप्ति थी, इसके साथ २ अढ़ाई वर्ष के पीछे एक रुपैया मासिक

वेतन वृद्धि भी हो जाया करती थी। इस प्रकार आप को नौकरी करते हुए ५ वर्ष व्यतीत हो गये, पर इतना होने पर भी पराधीनता की बेड़ियां पावों में पड़जाने पर भी-आपकी ईश्वरोपासना-गीता पाठ आदि धार्मिक कृत्यों में कुछ अन्तर नहीं आने पाया था। बराबर पूर्ववत् समाधि लगाना, प्रातः काल स्नान करना, प्रतिदिन गीता का पाठ करना नियमित रूप से होता रहता था। यहां तक कि पहिले की अपेक्षा गीता में और भी कहीं अधिस रुचि बढ़ गई थी इस कारण वह गीता का पाठ और भी अधिक प्रेम से किया करते थे। गीता के अधिकाधिक पाठ का आप पर बड़ा प्रभाव पड़ा और धीरे २ आपके विचार वेदांत की ओर झुकने लग गये यहां तक कि कुछ ही दिन में लेखराम एक वेदान्ती के रूप में दिखाई देने लगे। किन्तु इस अद्वैतवाद पर विश्वास होजाने पर भी-एक वेदान्ती के रूप में परिणत होजाने पर भी आपके उपासना क्रम में—नित्य नियम में, किसी भी प्रकार की विघ्न-बाधा न आसकी इसका कारण यही था कि आप यद्यपि वेदान्ती बन गये थे पर आपने अभी उपासना को जवाब नहीं दिया था और न अपने आपको आज कल के अनोखे ब्रह्मवादियों की भाँति संसार भर की विषय वासनाओं को इन्द्रियों का भोग मात्र कह कर उनमें अवलिप्त करते हुए शाखी ही बनाया था।

गीता का पाठ करते २ योगीराज श्री कृष्ण में श्रद्धा एवं भक्ति बहुत बढ़ गई। कृष्ण भक्ति के तरंग उठने लगे, माथे पर तिलक और हाथ में माला, तथा हृदय में कृष्णकी स्थापना हुई, रामलीलाएँ एवं कृष्ण लीलाएँ देखने की ओर रुचि का प्रवाह इतना बढ़ गया कि नौकरी छोड़ वृन्दावन निवासके लिए तैयार हो गये। इस समय आप की आयु २१ वर्ष की थी। इधर आप नौकरी त्याग वृन्दावन जाने की तैयारी करने लगे और उधर आप की माता ने आपके

विवाह की तैयारी करदी। किन्तु गीता के नैत्यिक अभ्यास से वैराग्य में पड़े हुए लेखराम ने विवाह से उस समय सर्वथा इनकार कर दिया जब बहुत कुछ समझाने पर भी आपने विवाह स्वीकार न किया तब कन्या के पिता ने विवश हो कर अपना उसी कन्या का विवाह आपके छोटे भाई तोताराम के साथ कर दिया।

पंडित् लेखराम उन दिनों यद्यपि अद्वैतवादी थे। और उस वेदान्ती सिक्ख सिपाही के सत्संग से यह भी पूरे वेदान्ती बन गये थे, पर हृदय अत्यन्त ही शुद्ध, निर्मल, एवं हठ या पक्षपात शून्य था। आप उन दिनों प्रायः मुसलमानी मत के पुस्तक भी देखा करते थे इन पुस्तकों को पढ़ते देख आपके एक मित्र "महता कृपाराम" ने आप से पूछा कि "आप मुसलमानी मत की पुस्तकों को इतना क्यों पढ़ा करते हैं, क्या यदि मुसलमानी मत ठीक नहीं प्रतीत हुआ तो मुसलमान हो जायएगा' ? उत्तर में आपने बिना किसी संकोच के कह दिया कि "हां" यदि दस घड़े बानी के रक्खे हों और मालूम न हो कि ठंडा एवं मीठा पानी किस घड़े में है तो सब से एक २ घूंट पीकर देख लेना चाहिए। इसी प्रकार सब मतों की पुस्तकें देख २ कर सब मतों की जांच करनी चाहिए कि कौन सा धर्म सच्चा है।

---

## नवीन परिवर्त्तन।

इन्हीं दिनों अर्थात् सन् १८८० ई० में काशी से एक टीका वाली गीता मंगवा कर उसके पाठ में लगे। और साथ ही मुन्शी कन्हैयालाल अलखधारी तथा मुन्शी इन्द्रमणि की पुस्तकें भी देखने लगे। इसका परिणाम यह हुआ कि थोड़े ही दिनों में मुसलमानी मत की

आलोचना करने लग गये और मन में उस पर कई प्रकार के तर्क वितर्क उठने लगे।

लेखराम की ये बातें छिपी न रहीं और अन्त को पुलिस भर में फैल गईं। पुलिस सुपरिन्टेडेन्ट मिस्टर "क्रस्टी" प्रायः आपको अपने डिप्टी रीडर मौलवी वज़ीरअली से भिड़ा दिया करते और यों दोनों के वादानुवाद को सुना करते और प्रायः सदाही पंडित लेखराम के पक्ष की पुष्टि किया करते थे। मुन्शी कन्हैलाल की पुस्तकों से ऋषि दयानन्द का परिचय प्राप्त हो चुका था। एक दिन "विद्या प्रकाश" नामी सम्वादपत्र में यह पढ़ कर कि स्वामी दयानन्द जी सरस्वती आज कल बड़े वेग से सद्धर्म्म प्रचार कर रहे हैं। और लोगों की शंकाओं को विद्या एवं बुद्धि से सिद्ध एवं निवारण करते हैं। आपने पत्र लिख कर स्वामी जी महाराज द्वारा प्रकाशित प्रायः सब पुस्तकें मंगवालीं और साथ ही "विद्या प्रकाश" के भी ग्राहक बन गये। थोड़े ही दिनों में स्वामी जी से पत्र व्यवहार करने और उनकी पुस्तकें देखने से लेखराम के विचारों में बहुत बड़ा परिवर्तन आगया। अद्वैत वाद के विचारों का भूम-भूत भाग गया और सच्चे सेवक की भाँति वैदिक धर्म की शरण में आकर सन् १८८१ ई० में पेशावर में "आर्यसमाज" स्थापित कर दिया।

उन दिनों आप केवल "लेख्" नामसे ही पुकारे जाते थे, जो आत्मसमर्पण करने से लेखराम और अन्त को धर्म पर आत्मोत्सर्ग करके धर्मवीर पंडित लेखराम बन गये। उनदिनों पेशावर में आप "माईरंजी की धर्मशाला" में रहा करते थे। इस लिए वहीं पर समाज की स्थापना हुई और वहीं पर साप्ताहिक अधिवेशन होने लगे। धार्मिक धुन इतनी समाई कि सब सरकारी काम फीके दिखाई देने

लगे। दिन रात वैदिक धर्म पर विचार होने लगा उसके प्रचार करने के साधनों तथा उपायों पर ध्यान दिया जाने लगा।

## दर्शन एवं शंका निवृत्ति।

यद्यपि आर्यसमाज स्थापित हो गया, लेखराम ने अपने मित्रों को वैदिक धर्म का महत्व भी समझाना आरम्भ कर दिया, पर मनन शील एवं उन्नति शील, मनुष्यों की शंका निवृत्ति केवल पुस्तकों के पढ़ लेने मात्र से नहीं हुआ करती। जो अद्वैतवाद का भूत शताब्दियों से भारत के प्रतिभा शाली मस्तिष्कों को घेरे हुए था, जो अन्यान्य भ्रांतियाँ शताब्दियों से भारत निवासियों के गले में हार की भांति पड़ी हुई थीं; उनका किसी एक दो पुस्तकोंसे एक दम निवारण होना सर्वथा कठिन होता है।

अभी लेखराम ने स्वामी जी की दो तीन पुस्तकें ही पढ़ी थीं, उन्हें सर्व श्रेष्ठ वैदिक धर्म का केवल सौरभ ही प्राप्त हुआ था। इसलिए अपने मित्रों को समाज के अधिवेशनों में सिद्धान्त समझाते हुए धीरे २ जहां शंका तरंग उठने लगे वहां वेदों का महत्व अधिकाधिक विस्तृत हो कर हृदय रूपी नेत्रों के सन्मुख आने लगा। थोड़े ही दिनों में स्वामी दयानन्द महाराज के दर्शन एवं संदेह निवारण के तरंग हृदय सागर में उठने लगे। परन्तु नौकरी-पराधीन वृत्ति की विगर्हणता के भाव-तरंग रह २ कर मन में उठते और विलीन हो जाते। सेवा वृत्ति और धर्म वृत्ति का मानसिक क्षेत्र में युद्ध होने लगा। सेवा वृत्ति अन्त को सेवा वृत्ति ही है धार्मिक वृत्ति की विजय हुई और ऋषि दर्शनों की उन्होंने मन में ठानली. सुतराम् उनके निकट इस परिवर्तन के होते ही सन्देह निवृत्ति, धर्मामृत पान, ऋषि दर्शन, एवं आशीर्वाद प्राप्तिके लिए २१ दिसम्बर सन् १८७५ से ५

मई सन् १८८० तक लगभग साढ़े चार वर्ष सर कारी नौकरी कर के पहिली बार ५ मई सन् १८८० को एक मास की छुट्टीली और ११ मई को अजमेर यात्रा के लिए पेशावर से प्रस्थान कर दिया। मार्ग में लाहौर, अमृत सर, जालन्धर एवं मेरठ आदि नगरों की बड़ी २ समाजों को देखते हुए १६ मई की रात को अजमेर में जाप-हुँचे और स्टेशन के समीप ही एक सराय में डेरा लगा दिया।

अगले दिन अर्थात् १७ मई सन् १८८० को पहिली बार एवं अन्तिमबार लेखराम ने बड़ी ही उत्कंठा एवं लालसा के साथ सेठ "फ़तह मल" की वाटिका में पहुँच कर ऋषि दयानन्द के दर्शन किये इस वैदिक धर्म सम्बन्धी आरम्भिक यात्रा एवं सत्संग का संक्षिप्त इति वृत्ति लेखराम के अपने शब्दों में यों है "स्वामीदयानन्द के दर्शनों से यात्रा के सब कष्ट भूल गया और उनके सदुपदेशों से सभी संशय दूर हो गये। जयपुर में मुझसे एक बंगाली ने प्रश्न किया था कि आकाश भी व्यापक है और ब्रह्म भी व्यापक है, तब एक ही वस्तु में दो व्यापक किस प्रकार रह सकते हैं? मुझसे इस का कुछ उत्तर न बन आया। तब मैंने यही प्रश्न स्वामीजी से पूछा। उन्होंने पास में पड़े हुए एक पत्थर के टुकड़े को उठाकर कहा "इसमें अग्नि व्यापक है या नहीं?" मैंने उत्तर दिया "है" पुनः पूछा "मट्टी व्यापक है या नहीं"? मैंने कहा कि यह भी व्यापक है। पुनः पूछा कि "परमात्मा"? मुझे कहना पड़ा कि वह भी व्यापक है। तब स्वामी जी ने कहा कि देखा कितने पदार्थ हैं? पर सब इस छोटे से टुकड़े में व्यापक हैं। निष्कर्ष यह है कि जिससे जो वस्तु होती है वह अपनी अपेक्षा से स्थूल में व्यापक होती है। मट्टी की अपेक्षा आकाश सूक्ष्म है अतः वह उसमें व्यापक है ब्रह्मयतः दोनों की अपेक्षा सूक्ष्म है इस लिए वह दोनों में व्यापक है। इससे मेरी शांति हो गई। मुझे भले प्रकार स्मरण है कि स्वामी जी ने मुझे

खुले शब्दों में कहा था कि जो भी संशय हो, निवारण कर लो। तथापि मैंने उस समय बहुत ही सोच समझ कर दश प्रश्न लिखे थे, जिनमें से यह तीन मुझे अब भी याद हैं शेष भूल गया, वे तीनों प्रश्न यह हैं –

प्रश्नः—जीव और ब्रह्म की भिन्नता में वेद का प्रमाण क्या है?

उत्तरः—यजुर्वेद का ४० वां अध्याय सारे का सारा जीव ब्रह्म की भिन्नता का प्रतिपादन करता है।

प्रश्नः—अन्यमतों के लोगों को शुद्ध करके अपने में मिलाना चाहिए वा नहीं?

उत्तरः—अवश्य शुद्ध करना और उनको अपने में मिलाना चाहिए।

प्रश्नः—बिजली क्या वस्तु है और कैसे उत्पन्न होती है?

उत्तरः—बिजली प्रत्येक स्थान में वर्त्तमान है और वह एक से अधिक वस्तुओं के संघर्षण अर्थात् रगड़ से उत्पन्न होती है। बादलों की बिजली, बादलों के ही परस्पर संघर्षण से उत्पन्न होती है। अन्त में मुझे यही आदेश हुआ कि २५ वर्ष से कम आयु में अपना विवाह मत करना।

इस प्रकार अपनी शंकाओं को निवृत्त करके २४ मई को जब वह अजमेर से पेशावर के लिए चलने लगे तब स्वामी जी से अन्तिम भेंट करने के लिए स्वामी जी के पास पहुँचे और अपने पास रखने के लिए स्वामी जी महाराज से निशानी के लिए कोई चीज़ मांगी। उस समय स्वामी जी के पास एक पुस्तक रक्खी थी वही उठा कर लेखराम को दे दी और वह "अष्टाध्यायी" थी जो लेखराम ने अपनी अन्यान्य पुस्तकों के साथ ही यह भी आर्यसमाज पेशावर को दान दे दी, जो शायद अब तक उक्त समाज के पुस्तकालय में रक्खी हो।

## विचार दृढ़ता और कार्यारम्भ ।

स्वामी दयानन्द के अल्पकालीन सत्संग ने लेखराम पर बहुत ही उत्तम प्रभाव डाला। सन्देह निवृत्त हो गये, विचार दृढ़ हो गये और लेखराम का वैदिक धर्म पर अटल विश्वास हो गया। अजमेर से लौटते ही पंडित लेखराम जी कार्य्य क्षेत्र में उतर पड़े और उन्होंने बड़े उत्साह के साथ वैदिक धर्म्म प्रचार करना आरम्भ कर दिया। यही नहीं आपका ध्यान आर्य साहित्य की वृद्धि की ओर भी आकर्षित हुआ, और सबसे पहले आपने आर्यसमाज पेशावर की ओर से "धर्मोपदेश" नामक एक मासिकपत्र उर्दू भाषा में निकालने का प्रबन्ध किया और उस का सम्पादनभार उन्होंने स्वयं अपने जोशीले कन्धोंपर लिया वह आर्यसमाज के प्रचार कार्य्य एवं वैदिक धर्म के विस्तार में सरकारी दासता की दशा में ही जी जान से लग गये और थोड़े ही समय में आप सत्य वक्ता प्रसिद्ध हो गये। लेखराम जी ने इस काम को केवल लेखनी द्वारा ही नहीं वरन् व्याख्यानों द्वारा भी सम्पादन करना आरम्भ कर दिया था। एक दिन, विज्ञापन दिया कि शराबनोशी (मदिरा-सेवन) पर व्याख्यान देंगे। व्याख्यान यतः एक अंजुमन के वृहद् हाल में था इसलिए बहुत से सैनिक भी ज़िलाधीश के साथ व्याख्यान में उपस्थिति हुए। पंडित जी का व्याख्यान युक्तियुक्त, प्रभाव शाली एवं बड़ा ही मर्मस्पर्शी था इसका परिणाम यह हुआ कि एक फौज़ी अफ़सर ने भी व्याख्यान का ज़ोरदार शब्दों में समर्थन किया और साथ ही यह सुसमाचार भी सुनाया कि मैंने अपनी सेना में मद्यपान बन्द कर दिया है।

## दशापरिवर्तन ।

सन् १८८३ ई० के प्रथम भाग में ही सुपरिन्टैन्डेन्ट मिस्टर

क्रिस्टी पेशावर से अन्यत्र बदल दिये गये। उनके स्थान पर नवीन अध्यक्ष के आने से और भी बहुत से परिवर्तन हुए जिनका प्रभाव हमारे चरित्र नायक पर भी पड़ा और इस चक्र में आपको भी पेशावर शहर से एक "सुआवी" नामी थाने को बदल दिया गया। किन्तु वहां पहुँचकर भी आपने अपने धर्म कार्य को रोक दिया हो ऐसा उनसे नहीं हुआ किन्तु बराबर वह अपने प्रचारका काम करते रहे और अपने "धर्मोपदेश" के लिए लेखादि नियमित रूपसे भेजते रहे। इस के साथ ही आर्यसमाज पेशावर को अपना मासिक चन्दा १) सैकड़ा के स्थान ५) सैकड़ा के लेखे से भेजने लगे और यों दूर पहुँच कर भी समाज हित का परिचय देना भूले नहीं, आपके बाहर चले जानेके थोड़ी ही समय बाद समाज ने ठीकआर्थिक प्रबन्ध न होने के कारण "धर्मोपदेश" को बन्द कर देना चाहा पर लेखराम ऐसा नहीं चाहते थे। यह सुन कर आपने अपने चचा महता गंडाराम जी को एक पत्र लिखा जिससे मालूम होता है कि उक्त मासिक पत्र को वे बन्द नहीं करना चाहते थे और इसके लिए आर्थिक सहायता देने के लिए भी वह तैयार थे। परन्तु आर्यसमाज पेशावर ने उसका चलाना तो भी उचित न समझ उसे बन्द ही कर दिया, अस्तु।

सुआवी में रहते हुए एक मुसलमान पुलिस इन्स्पेक्टर थाने का निरीक्षण करने आया। उसने बैठे २ लेखराम से धर्म चर्चा छेड़ दी। लेखराम डरपोक तो थे ही नहीं, बड़ी निर्भीकता से उन्होंने उसे उत्तर दिये जैसे कि प्रायः वह अन्य मुसलमानोंको दिया करते थे। इन्स्पेक्टरको यह बुरा लगा उसपर अफ़सरी का भूत सवार था। यद्यपि उस दिन उसने प्रत्यक्ष रूपमें कुछ न कहा पर अगले दिन "आज्ञाभङ्ग" की रिपोर्ट करही तो दी, इसके परिणाममें ऊपरसे आज्ञा हुई कि छै: मासके लिए दर्जा घटा दिया जाय और लेखरामको थाना

"कालूखां" में बदल दिया जाय ? कालूखां के थाने में पहुँचने से पहिले वहां के मुसलमानों में एक प्रकार का ऊधम सा मच गया। लेखराम के धर्मावेश को प्रायः सभी पहचानते थे, मुसलमान भी धर्मावेश में अपने आपको अद्वितीय मानने वाले थे। परिणाम यह हुआ कि "कालूखां" पहुँच कर भी पुराना दर्रा ही जारी रहा अर्थात् वहां वही उनके बहस मुबाहसे जारी रहे।

## धर्मोपदेश का अन्त्येष्टि संस्कार।

लेखराम के पहिले मासिक पत्र "धर्मोपदेश" का मार्च सन् १८८३ ई० में अन्त्येष्टि संस्कार हो ही गया था। कालूखां में पहुँच कर उनकी धार्मिक निर्भयता और अपनी हाज़िर जवाबी (शीघ्र वादिता) के फल स्वरूप किसी "हज़रतशाह चौकीदार" की रिपोर्ट मात्र से एक दर्रा तोड़ दिया गया और साथ ही उनको पेशावर पुलिस दफ्तर में बदल दिया गया। यह आज्ञा ६ जून सन् १८८४ को हुई थी परन्तु लेखराम को अमली तौर पर इससे पहिले ही पेशावर बुला कर साहिब 'असिस्टैन्ट" की पेशी में कर दिया गया था।

एक बार आप को पता लगा कि आज़मगढ़ निवासी चौधरी घासीराम मुसलमानी मत में जाने वाले हैं। आप ने पता लगते ही छुट्टी की अर्ज़ीदी और उसके स्वीकार न होने पर त्याग पत्र देने के लिए उद्यत हो गये। पर बाद में छुट्टी स्वीकार कर ली गई और आपने आज़मगढ़ पहुँच कर चौधरीजी को मुसलमान होनेसे रोका। इसी वर्ष काश्मीर की राजधानी जम्बू में भी किसी नूरुद्दीन खां" नाम के राजकीय हकीम की प्रेरणा से ठाकुर दास नाम के एक हिन्दू मुसलमान होने को तैयार हो गये। इसे भी कई बार जम्बू जाकर बचाया।

गुरु० विरजानन्द ... पुस्तकालय
पुस्तक परिग्रहण क्रमांक
दयानन्द महिला महाविद्यालय, कुरुक्षेत्र

## मानव दासता से मुक्ति

पेशावरके मुसलमान पुलिस अफसरों ने विचारा था कि लेख-रामका दर्जा घटा, एवं पेशावरमें बुला, पेशी में लगाकर उसे दबावेंगे। पर ऐसा होना ही नहीं था। पेशावर में पहुँच कर भी लेखराम के कार्य क्रम में अन्तर न पड़ा वे उसी प्रकार अपना कार्य करते रहे पुलिस के इस अन्तिम परिवर्तन ने लेखराम को दबाने के स्थान उलटा उभारा और उनको मानव दासता से सदा के लिए मुक्त हो जाने को उत्तेजित एवं उत्साहित किया। उनको नौकरी से एक दम घृणा हो गई, और सोच विचार के अनन्तर यही अन्तिम निश्चय रक्खा कि इस दासता से त्यागपत्र देदिया जाय। अन्तिम निश्चयके होतेही २ जौलाई सन् १८८४ ई०को त्यागपत्र देदिया गया, क़ानूनी मियाद के अनुसार २४ सितम्बर सन् १८८४ को यह त्याग पत्र अफ़सर के सन्मुख उपस्थित किया गया। स्थानिक अफ़सर ने बहुतेरा समझाया और त्याग पत्र लौटा लेने की प्रेरणा की, पर यहां तो धुन ही दूसरी सवार थी, अफ़सर के समझाने से लेखराम और अड़ गये, समझाने का और भी उलटा प्रभाव हुआ। अन्ततोगत्वा ३० सितम्बर से नौकरी त्याग की स्वीकारी की आज्ञा पर २५ सितम्बर को ही हाकिम "निकलसन" के हस्ताक्षर करा लिए और अपने जीवनके दूसरे दौरकी समाप्ति की और सारजन्ट लेखराम पंडित लेखरामके रूप में प्रसिद्ध होने के लिए धर्म्मप्रचार के मार्ग में अवतीर्ण हुए।

सन् १८८२ में जब कि लेखरामजी पेशावर में हीं थे तब उनके पास स्वामी दयानन्द की ओर से दो पत्र प्राप्त हुए। जिनमें से एक गौ रक्षा के सम्बन्ध में प्रार्थना पत्र पर प्रजा जनों के हस्ताक्षर कराने, और दूसरे में पञ्जाब में हिन्दी प्रचारार्थ शिक्षा कमीशन को

मैमोरियल भेजने की प्रेरणा थी। यह दोनों कार्य लेखराम जी ने जी जान से किये।

## लेखबद्ध कार्य।

नौकरी छोड़ने के अनन्तर आपने आर्यसमाज पेशावर का कार्य नियम पूर्वक अपने हाथ में ले लिया। शायद इसी लिए आर्यसमाज के मंत्री होने पर आप अपने आपको प्रायः मैनेजर आर्यसमाज पेशावर लिखा करते थे। नौकरी त्यागने पर आप सब से पहले रावलपिंडी समाज के उत्सव पर गये, और वहां पर एक बहुत ही प्रभावशाली लेख बद्ध व्याख्यान दिया। व्याख्यान "वैदिक धर्म के सार्वभौम होने के प्रमाण" विषय पर था जो बहुत ही उत्तम हुआ और लेखराम के धर्म प्रेम का वह एक नमूना था। रावलपिंडी का उत्सव करके पण्डित जी "लाहौर" में आये और समाज मन्दिर में ही ठहरे. आपने यहां पर ठहर कर संस्कृत का अभ्यास करना आरम्भ किया। फ़ारसी के आप पहले ही से ज्ञाता थे, और जिन दिनों आपको ठाकुरदास की धर्म रक्षा के लिए जम्मू जाना पड़ा था उन दिनों आप वहां पर "नारायण कौल" जी के पास ही ठहरा करते थे। इस लिए इनके सत्संग से आपने अरबीमें भी योग्यता प्राप्त करली थी। इस लिए अब आपने सब प्रकार से तैयार होकर धर्म प्रचार एवं धर्म रक्षा की सामग्री एकत्रित करने में लगना उचित समझा था। एतदर्थ ऐसा ही किया—

## पुस्तक लेखन।

इन्हीं दिनों "मिर्ज़ा ग़ुलाम अहमद क़ादियानी" ईश्वरीय ज्ञान का दावा करके "मसीह मौऊद" का पद लेने के लिए ख़ूब हाथ पैर मार रहे थे। जिन दिनों पंडित लेखराम जी पेशावर से बाहर के थानों में नौकरी पर ही थे, तभी उनके पास मिर्ज़ा साहिब की

लिखी एक पुस्तक पहुँच गई थी जिसका नाम "बुराहीन अहमदि या" था। इस पुस्तक के चौथे भाग में आर्यसमाज और वैदिक धर्म पर बहुत ही निर्दयता से आक्रमण किये गये थे। आर्य पथिक को जिस बात की धुन लग जाती उसके आरम्भ करने में उनसे देर होना असम्भव था। उस समय कागज पास न होनेसे आर्यसमाज के रजिष्टरों पर ही उत्तर लिखना आरम्भ कर दिया। किन्तु इस पुस्तक का समग्र उत्तर लिखनेमें आपने जम्बू निवासी कौल महाशय से भी बहुत सहायता ली और कौल बाबू ने इसे प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार किया। जब "बुराहीन अहमदिया" के उत्तर में "तक ज़ीब बुराहीन—अहमदिया" नामक प्रशस्त पुस्तक तैयार हो गई तो सर्वप्रथम ही प्रथम यह अक्तूबर सन् १८८४ ई० को गुरुदासपुर आर्य समाज में पढ़कर सुनाई गई। इसके साथ ही मिर्ज़ा महाशय को शास्त्रार्थ की घोषणा भी दी गई। इस घोषणा के उत्तर में मिर्ज़ा साहिब ने तो कोई उत्तर न दिया हां, आर्यसमाज में 'मिर्ज़ा के पुस्तक से फैली हुई हल चल मिटगई और उसकी पोल खुल गई। पण्डित जी का यह पुस्तक इतना पसंद किया गया कि बहुत से लोगों ने छपने से पहिले ही इसकी हस्त लिखित लिपियां बड़ा व्यय कर के प्राप्त कीं और उनको पढ़ कर लाभ उठाया।

सन् १८८५ में पं० लेखराम जी दूसरी बार कादियान में गये। इस का मुख्य कारण यह था कि मिर्ज़ा साहिब ने एक विज्ञापन निकाला था और उसमें यह लिखा था कि "जो भी आर्यसमाजी हमारे पास आए और कम से कम एक वर्ष तक रहे, यदि वह इतने मात्र से मुसलमानी मत स्वीकार न करले तो हम उसे दो सौ रुपैया मासिक के लेखे से दे देंगे"। इस के उत्तर में स्वयं पण्डित जी कादियान में पहुँचे और दो मास तक वहीं रहे।

## समाज स्थापन ।

क़ादियान में रहते हुए पण्डित जी ने एक ओर तो मिर्ज़ा साहिब के इस्लामी कोठेपर जा जा कर उनका नाकों दम किया, और लगातार तीन बार कई एक सज्जन पुरुषों को अपने साथ लेजाकर वहां उसे तमाम बातों में निरुत्तर किया और दूसरी ओर खुले व्याख्यानों में न केवल उसके "बुराहीन" की ही पोल खोली तथा उनकी तमाम इलहामी चालों का भी भण्डाफोड़ कर दिया। इससे मिर्ज़ा साहिब की आमदनी में बहुत बड़ी बाधा उपस्थित हो गई और इस घाटे को पूरा करने के लिए उसे नवीन से नवीन चाल चलनी पड़ी।"

पण्डित जी ने जो कुछ भी काम किया उसका कुछ न कुछ परिणाम अवश्य निकलना था तथाच बहुत से हिन्दू भी सत्यासत्य का भेद पाकर मिर्ज़ा महाशय के जाल से निकले और इसके साथ ही क़ादियान में आर्य्यसमाजकी स्थापना भी हो गई।

## क़ादियान पर दूसरा धावा।

मिर्ज़ा जी को प्रत्येक मार्ग से निरुत्तर करके एवं क़ादियान समाज स्थापित करके, पण्डित जी धर्म प्रचार करते हुए अम्बाला छावनी में पहुँचे। वहां पर ही आप को क़ादियान से तार पहुँचा कि फ़ौरन क़ादियान पहुँचो। बात यह थी कि पण्डित जी के जाने के थोड़े ही दिन बाद मिर्ज़ा जी ने एक "विष्णुदास" नामी हिन्दू को अपने पास बुलाकर कहा कि यदि तुम एक वर्ष के भीतर मुसल्मान न हो जाओगे तो हमारे इलहाम के अनुसार, मर जाओगे।

२ दिसम्बर १८८५ को मिर्ज़ा ने यह धमकी दी और इस बातका तार पातेही ४ दिसंबरको पंडित लेखराम अचानक बिजलीकी भांति

ा चमके। उसी दिन "विष्णुदास" को बुला कर समझाया गया
ौर खुले व्याख्यानों में मिर्ज़ा महाशयकी एक बार पुनः पोल खोली
क जिससे विष्णुदास का मुसलमान होना तो एक ओर रहा
लटा वह आर्य्यसमाज का सभासद बन गया और आजीवन
र्ज़ा साहिब की कुटिल नीतियों की ख़बर लेता रहा।

## नुस्ख़ा ख़ब्त अहमदिया की रचना।

सन् १८८६ ई० के आरम्भ में पण्डितजी की योग्यता की धूम
ारों ओर मच चुकी था, और स्थान २ से मुसलमानों के मुक़ाबले
निमन्त्रण आने लग गये थे। "तकज़ीब बुराहीन अहमदिया"
ामी पुस्तक यद्यपि अभी छपी न थी पर उसकी बहुत सी हस्त-
खित प्रतियां चारों ओर फैल चुकी थीं, और मुसलमानों के साथ
ात चीत करते समय उस पुस्तक से लोग सहायता लेने लग
ये थे।

मार्च सन् १८८६ में मिर्ज़ा साहिब अपने चेलों की अति वृद्धि
ौर कुछ धन की प्राप्ति आदि कारणों से होशियारपुर पहुँचे।
हीं पर आर्य सेवक महाशय "मुरलीधरजी" रहते थे जो यवन
न की पोल खोलने में अद्वितीय थे। मिर्ज़ा साहिब की डींगें सुन
र मास्टरजी से रहा न गया और ११ मार्च सन् १८८६ की रात
ो मिर्ज़ाजी के डेरे पर पहुँचे। आपने जाते ही मुहम्मद साहिब
: चांद के दो टुकड़े करने वाले प्रसिद्ध चमत्कार पर लेख बद्ध
ाक्षेप किये। अनुमान ६ घंटे तक प्रश्नोत्तर होते रहे पर मिर्ज़ा
हाशय से आयँ बायँ शायँ के अतिरिक्त कुछ उत्तर, न बन पड़ा।
७ मार्च के दिन मिर्ज़ा साहिब ने तङ्ग आकर असली प्रश्न को ही
ड़ा दिया और कहने लगे कि "जीवात्मा नित्य नहीं बल्कि
त्पत्ति वाला है"। इस पर भी देर तक वादानुवाद होता रहा,

परन्तु मिर्ज़ा महाशय बहस करने तो गये ही न थे। उनका प्रयोज
दूसरा था। उसी की सिद्धि करने के लिए इस समय को अच्छ
समझा और एक २६० पृष्ठ की "सुर्मए चश्मा आरिया" नामक
पुस्तक लिख डाली। इस पुस्तक के प्रकाशित होते ही पंडित लेख
राम के हृदय पर एक चोट लगी, किन्तु यह विचार करके व
अभी चुप रहे कि शायद मास्टरजी ही इसका उत्तर लिख देंगे।

जब जुलाई सन् १८८७ में आर्य पथिक को, पता लगा कि
मास्टरजी को सरकारी नौकरी से अवकाश न मिलने के कार
उक्त पुस्तक के उत्तर लिखने एवं छपवाने में अनेक बाधाएं हैं ;
आपने स्वयम् ही मिर्ज़ा के इस दूसरे आक्रमण का भी मुँह तो
उत्तर लिखा, और उसका नाम "नुस्ख़ा ख़ब्त अहमदिया" रक्खा
इस पुस्तक के नामकरण का कारण आर्य पथिक ने यह लिख
है कि वास्तव में मिर्ज़ा के ये आक्षेप सचाई से कोसों दूर
और साथ ही अनुचित अभिमान एवं झूठ से समस्त पुस्त
भरपूर है जो रास्ती नहीं बल्कि इलहामी पागलपन ज
पड़ता है। इस लिए आवश्यक हुआ कि हम वैदिक चिकित्स
द्वारा उनके इस पागलपन का उपाय करें ताकि ईश्वर उन
नीरोग करे। इसी कारण से इस पुस्तक का नाम "नुस्ख़ाख़ब्त अ
मदिया" रक्खा गया।

इसके साथ ही आपने "सदाक़त ऋग्वेद"—"इञ्जील की हक़ी
क़त"—"सच्चे धर्म की शहादत"—"मूर्ति प्रकाश"—"स्त्री शिक्षा
एवं "इतरे कहानी" आदि अन्यान्य छोटे २ रिसाले भी लिख डा
थे और तब तक "तकज़ीब बुराहीन महमदिया" का भी प्रथ
भाग प्रकाशित कर दिया गया था।

सन् १८८७ के आरम्भमें पंडितजी को आर्य्य गज़ट का सम्पाद
बना दिया गया जो फ़ीरोज़पुर से उर्दू में साप्ताहिक पत्र निकल

ा। उस समय पंजाब के आर्य्य समाजों के हाथ में अंग्रेज़ी के
आर्य्य पत्रिका" के अतिरिक्त अपने विचार सर्व साधारण तक
हुंचाने का एक मात्र साधन यही पत्र था जो आर्य्य पथिक के
बल हाथों में आकर एकदम चमक उठा। अनुमान दो वर्ष तक
डित जी इसका सम्पादन करते रहे उन दिनों इसके लेख पंथाइयों
दिलों को हिला देने वाले हुआ करते थे। इस कार्य्य के करते
हने पर भी आर्य्य पथिक को आर्य्य समाजों के उत्सवों एवं
स्त्रार्थों में बराबर जाना पड़ा करता था।

## म्बी यात्रा और स्वामी दयानन्दजी की जीवन सम्बन्धी सामग्री संचय करना।

स्वामी दयानन्द जी महाराज का स्वर्गवास हुए लगभग साढ़े
ार वर्ष हो चुके थे, और समाजों में उनका जीवन चरित्र लिखने
सम्बन्ध में कई सभाओं की ओर से प्रेरणाएँ होने लग गईं थीं।
थाच १२ अप्रैल सन् १८८८ ई० को आर्य्य समाज "मुल्तान" ने
बसे पहले अपनी अन्तरङ्ग में यह प्रस्ताव उपस्थित कर पास
इया कि स्वामी जी महाराजके जीवन वृत्तान्तों को एकत्रित करने
लिए पण्डित लेखराम को नियत किया जावे। यही प्रस्ताव श्री-
ती आर्य्य प्रतिनिधि सभा के १ जुलाई सन् १८८८ के अधिवेशन
प्रविष्ट होकर स्वीकृत हुआ। इसी दिन से मानों पंडित लेखराम
। सच्चे अर्थों में आर्य्य पथिक बनाये गये। निदान नवम्बर सन्
८८८ से आर्य्य पथिक ने स्वामी जी महाराज के जीवन वृत्त को
कत्रित करने का आरम्भ कर दिया। ऋषि जीवन का काम यदि
ार्य्य पथिक को न देकर किसी दूसरे ऐसे मनुष्य को दिया जाता
। उपदेश के कामों से युक्त होता तो बहुत शीघ्र यह काय
माप्त होकर जनता के सम्मुख प्रस्तुत कर दिया जाता। परन्तु

आर्य्य पथिक इतनी शीघ्रता न कर सके क्योंकि उन्हें प्रत्येक समय उन्नति का ध्यान रहता था जो उनको एक स्थान पर बैठने न देता। वे किसी भी हिन्दू के मुसलमान अथवा ईसाई बनने का समाचार पाकर विचलित हो उठते थे, मानों उनके दिल पर कोई भारी आघात किया गया हो। ऐसी दशा में वे सब आर्यों को छोड़ कर वहीं पहुँच जाते थे। यही नहीं किन्तु मार्ग में भी चलते २ इस प्रकार के समाचार सुन कर उतर पड़ते और कहीं कहीं सप्ताहों ठहरना पड़ता था। प्रतिनिधि सभा उन पर अधिक बल नहीं डाल सकती थी क्योंकि यह काम भी उसीका था। इस प्रकार लगातार काम करते हुए, शङ्का समाधानों में फँसते हुए, उत्सवों एवं शास्त्रार्थों में सम्मिलित होते हुए भी लेखराम बराबर अपना काम करते रहे। और जो वृत्तान्त वे संग्रह कर सके थे शायद ही कोई दूसरा कर सकता।

यद्यपि आर्य प्रतिनिधि सभा ने शीघ्रतम जीवन वृत्त एकत्रित करने के लिए आर्य पथिक को कई तार दिये, पर उसने धर्म प्रचार को कभी ठंडा न होने दिया। एक बार आप को समाचार मिला कि अमुक स्थान पर ईसाई बड़ा ऊधम मचा रहे हैं। आप बिना ही सभा की स्वीकारी लिए वहां पहुँचे और शास्त्रार्थ कर डाला वापिस आने पर सभा ने जब आक्षेप किया तो आपने झट कह दिया कि "इतने दिनों का वेतन काटलो"। इस प्रकार जीवन चरित्र की सामग्री एकत्रित करते हुए आर्य पथिक जालन्धर, कानपुर, की यात्रा करके प्रयाग पहुँचे। परोपकारिणी सभा का वैदिक प्रेस उन दिनों प्रयाग में ही था कोई एक मास तक आर्य पथिक प्रयाग में रहकर सब पत्र व्यवहार देखते रहे इन्हीं दिनों स्वामी जी का वेद भाष्य छपता था। पण्डित जी ने एक दिन बड़ी विचित्र लीला देखी और वह यह थी कि वेद भाष्य के

एक अङ्क में पण्डितों ने कुछ पोप लीला की थी जिससे वह छपा हुआ फ़ार्म जला दिया गया और उसका संशोधन कराकर फिर से छपवाया गया। यह देख पण्डित जी ने हल चल डाल दी, जिसका परिणाम यह हुआ कि वेद भाष्यके अंक संशोधन का काम कतिपय प्रसिद्ध आर्य पुरुषों के हाथ में दिया गया। वहां से चलकर पंडित जी काशी, मिर्जापुर, आदि प्रसिद्ध नगरों में भ्रमण करते हुए दानापुर पहुंचे और एक मास के लगभग अर्थात् १७ जनवरी सन् १८९१ से १२ फर्वरी सन् १८९१ तक दानापुर, बांकीपुर, एवं पटना में ही काम करते रहे।

पटना में आप श्रीयुत् डाक्टर मुनीलाल शाह के मकान पर रहा करते थे। जिन दिनों आप पटने में थे उन दिनों पटना समाज में पण्डित लेखराम जी के घर से एक तार पहुँचा जिसमें पंडित जी के जीवित रहने का समाचार पूंछा गया था। इस अपूर्व घटना का कारण जब शाह महाशय ने पंडित जी से पूछा तब आपने उत्तर दिया कि "प्रायः यवन लोग हमारे मकान पर ऐसा ही अमंगल समाचार भेजा करते हैं" शाह महाशय उन दिनों मैडिकल स्कूल में पढ़ते एवं समाज के सामयिक मंत्री थ। एक दिन शाह जीको चिन्तित देख पण्डितजी ने पूछा कि आप आज इतने चिन्तित क्यों हो रहे हैं? इसके उत्तर में शाह महाशय ने विनीत भावसे कहा कि मुझे इस बातको बहुत ही चिन्ता लग रही है कि कहीं यहां रहते हुए मुसलमान लोग आप पर कोई चोट न कर देवें" यह सुन कर आर्यपथिक ने हंस कर उत्तर दिया कि "मंत्री जी! मृत्यु तो एक दिन अवश्य आवेगी पर सच्चे धर्म के लिए शहीद होनेके बराबर दूसरी कोई भी मौत नहीं है। इतिहास पढ़ो और देखो कि इस पृथिवी तल पर जिन धर्म प्रेमियों ने स्वधर्म के लिए अपने प्राणों को तुच्छ समझ कर निछावर कर दिया। उन्होंने कितना धर्म

कार्य किया, उनके चरित्रों का पाठ करते हुए, अब भी धर्मोत्साह की वृद्धि होती है।

आर्यपथिक के इन शब्दों में उनके भावी विचार, जीवनोद्देश एवं जीवन परिणाम छिपे हुए थे। जो अन्त को गौरवान्वित प्रकट हुए और शहीद की शहादत ने अपने रक्त से साक्षी दी कि आर्य पथिक ने जो कहा था, उसमें सार था, तत्त्व था—एवं भावी जीवन निहित था।

यहीं पर आपको मौलवी ख़ुदाबख़्श के पुस्तकालय में से वह ४० पारे का क़ुरान मिला था जिसकी कि आपको बड़ी आवश्यकता थी और जिस के खोजने में आपको बहुत परिश्रम करना पड़ा था। कहते हैं कि इसके अन्तिम १० पारों में मुसल्मानों के वर्तमान विश्वासों के बहुत कुछ विरुद्ध लिखा है जिन्हें कि उस समय के मुसल्मान विद्वानों ने अपने विरुद्ध समझ निकाल दिया था। यहां से उचित सामग्री एकत्रित करके कलकत्ते की ओर प्रस्थान किया।

## हरिद्वार कुम्भ पर धर्म प्रचार।

कलकत्ते में रहते हुए आपको पता लगा कि हरिद्वार पर आज कल कुम्भ का मेला भरने वाला है। इन दिनों इस मेले के सम्बन्ध में लाला मुन्शीराम जी के कई एक लेख निकले थे जिनसे प्रभावित हो कर आर्यपथिक ने अपनी जेब से ५) चन्दा दिया और आप भी मेला प्रचार में सम्मिलित हुए।

## हैदराबाद यात्रा।

कुम्भ मेला समाप्त करके २० मई १८९१ के लगभग हैदराबाद की ओर चल दिये। हैदराबाद सिन्ध में उन दिनों कई एक हिन्दू घराने मुसल्मान होने की तैयारी कर रहे थे जिनके मुखिया

"सूरज मल" जी थे। पण्डित जी का हैदराबाद में आना सुनकर वे स्वयं तो अपनी ज़मीदारी में चले गये, पर उनके पुत्र वहीं थे जिन में से बड़े का नाम "मेवाराम" था पण्डित जी उनके पुत्रों को मिले। पहले तो उन्होंने बहुत टाला पर अन्त को विचार करना ही पड़ा। पण्डित जी ने शास्त्रार्थ के विज्ञापन निकालने आरम्भ कर दिये, अन्त को सैय्यद मुहम्मद अलीशाह के साथ विचार हुआ पण्डित जी के प्रश्नों से जब आप (सय्यदजी) तंग आगये तब अन्यान्य मौलवियों ने पत्र भेजने आरम्भ किये। पण्डित जी ने सब का उत्तर यथा योग्य दिया। इस समस्त कार्य कलाप का परिणाम यह निकला कि सूर्यमल जी के दोनों पुत्रों को इस्लाम से ग्लानि हो गई और इस प्रकार एक हिन्दू परिवार यवन मत में जाने से बच गया। हैदराबाद सिन्ध में रहकर आर्य पथिक ने जहां शास्त्रार्थादि अन्यान्य कार्य किये वहां ईसाई मत के सम्बन्ध में "क्रिश्चियन मत दर्पण" नामी पुस्तक की भी तैयारी आरम्भ की, तथा सृष्टि उत्पत्ति एवं उसके इतिहास पर भी "तारीख़ ए दुनिया" नामी एक गवेषणा पूर्ण पुस्तक भी लिख डाली, जो कि सितम्बर १८९१ में ही छप गई।

## नाहन यात्रा।

१५ दिसम्बर १८९१ को मन्त्री आर्य प्रति निधि सभा पंजाब के एक पत्र से आपको पता लगा कि "नाहन" राज्य में केशवानन्द नामी एक उदासी साधु आर्य धर्म के विरुद्ध बहुत ही अनुचित आन्दोलन कर रहा है। यह सुनकर आप उसी समय नाहन पहुँचे और महाराज नाहन के सन्मुख ही केशवानन्द से बातचीत की महाराज पर अच्छा प्रभाव पड़ा और आपको ४ व्याख्यानों के लिए महाराज ने आज्ञा प्रदान की। इन व्याख्यानों का नाहन वासियों

पर खूब असर हुआ और नाहन में आर्यसमाज की स्थापना हुई नाहन से लौटकर कुछ दिन पंजाब में ही भ्रमण करते रहे। अनन्तर २१ मार्च सन् १८९२ के लगभग "भियानी" ज़िला शाहाबाद में प्रचार एवं समाज स्थापन करके अजमेर ( राज पूताना ) की ओर प्रस्थान किया, और जून सन् १८९२ के अन्त तक राज पूताने में भ्रमण करके जीवन चरित्र सम्बन्धी सामग्री का संग्रह करते रहे इसके बाद जुलाई मास तक पण्डित जी कोटा—बूंदी—आदि की ओर भ्रमण करते हुए "सिवी-केटा" आदि स्थानों पर स्वामी नित्यानन्द जी के साथ प्रचार का कार्य करते रहे।

अक्टूबर मास के आरम्भ में ही आप जालन्धर पहुँचे जहां कि उन दिनों आर्य समाजी जाटों का एक रिसाला छावनी में स्थित था। पण्डित जी ने वहां रह कर दो तीन व्याख्यान दिये। इसके बाद पुनः आपने राज पूताने की ओर प्रस्थान किया और जीवन वृत्तान्त की खोज में अजमेर, बीकानेर, अहमदाबाद आदि प्रसिद्ध स्थानों में होते हुए "मोरवी" राज्य तक पर्यटन किया।

इसी वर्ष "क्रिश्चियन मत दर्पण" भी छपकर प्रकाशित हो गया। सन् १८९३ के आरम्भ में ही पण्डित जी ने ऋषि जीवन के सम्बन्ध में अपनी खोज का काम समाप्त कर दिया। स्वामी जी महाराज के जन्मस्थान के विषय में अन्तिम निश्चय करके आप अजमेर में अन्तिम व्याख्यान द्वारा कुछ नवीन आन्दोलन कर आगरे पहुँच गये। स्थानीय आर्यसमाज एवं मित्र सभा के वार्षिक उत्सवों पर व्याख्यान देकर आप पंजाब की ओर लौट गये।

## गृहाश्रम प्रवेश।

वैशाख संवत् १९५० विक्रमी में आपकी आयु ठीक ३५ वर्ष की हो गई थी। इसी वर्ष आप छुट्टी लेकर अपने पुराने निवास स्थान

ग्राम "कहटा" में गये और अपनी आयु के ३६ वें वर्ष में मरी पर्वतान्तर्गत "भज्ज" ग्राम निवासिनी कुमारी "लक्ष्मी देवी" के साथ विवाह किया विवाह के पश्चात् कुछ समय तक और अपने ग्राम में रहकर अपनी सहधर्मिणी लक्ष्मीदेवी को अपने सन्मुख धार्मिक शिक्षा देने का प्रयत्न करते रहे। परन्तु इधर धर्म युद्ध बड़े वेग से चल रहा था जिसमें कि उनकी अत्यन्त आवश्यकता थी। इस लिए आप अधिक समय तक अपने ग्राम में निवास न कर सके और शीघ्र ही आपको पुनः कार्य क्षेत्र में उपस्थित होना पड़ा।

## जोधपुर में मांस का झगड़ा।

लाहौर में मांस भक्षण के विषय में जो विवाद उठा था उसको अधिक सहायता जोधपुर से ही मिली थी। जोधपुर के महाराज जनरल सर प्रतापसिंह जी तीन पीढ़ी से प्रबन्ध कर्त्ता चले आते हैं। आप यद्यपि स्वामी दयानन्द के भक्त थे और हैं, पर किसी भी कारण से आपके हृदय में यह बात घर कर गई है कि "बिना मांस भक्षण किये क्षत्रिय जाति की उचित वीरता जाती रहेगी।" स्वामी प्रकाशानन्द जी मांस दल की ओर से जोधपुर के इस आन्दोलन में कार्य भागी होने के लिए ही पहुँचे थे। इसका असली मतलब यही था कि समाचार पत्रों के सम्पादकों तथा उपदेशकों से यह व्यवस्था प्राप्त की जावे कि मांस भक्षण शास्त्रोक्त है। कतिपय भोजन भट्टों ने राजा साहिब के स्वर में स्वर मिलाकर इस मांस महायज्ञ में दो चार आहुतियां भी दे डालीं। इस कार्य के लिए कुछ उपदेशकों को जेब ख़र्च भी मिल गया। अब विचार यह स्थिर हुआ कि पंडित "भीमसेन" जो उन दिनों स्वामी दयानन्द के निज शिष्य समझे एवं माने जाते थे, तथा पण्डित गंगाप्रसाद जी एम० ए० मेरठ निवासी जो उन दिनों पण्डित गुरुदत्त के बाद उनके सदृश

ही समझे जाते थे। इन दोनों को भी बुलाया जावे और इनसे भी व्यवस्था ली जावे। इनकी दी हुई व्यवस्था का मूल्य इतर पेटुओं से कुछ अधिक होगा। यह निश्चय करके इन दोनों महानुभावों को भी महाराज की ओर से निमंत्रण भेजा गया।

पण्डित भीमसेन की प्रकृति से आर्य पुरुष अपरिचित न थे। उनको इस सोलह कला संपूर्ण रूप्यक भगवान के सन्मुख सिर झुकाते देर न लगेगी। यही समझ कर उनकी नस नाड़ी को ठीक रखने के लिए पंजाब प्रतिनिधि सभा की ओर से पण्डित लेखराम जी का ही नियत करके भेजा जाना निश्चित किया गया। महाराज के निमंत्रण को पाकर पण्डित भीमसेन एवं पण्डित गंगा प्रसाद जी दोनों २ अगस्त सन् १८९३ ई० की प्रातः काल जोधपुर पहुंच गये। जब इस विषय पर महाराज की पण्डित गंगाप्रसाद जी से बात चीत हुई और आपको कई प्रकारके प्रलोभन देकर ऊंच नींच भी समझाया गया, तब आपने विस्पष्ट कर देना ही उचित समझा और कहा कि "धन एवं प्रतिष्ठा के लिए मिथ्या भाषण करके धर्म से पतित होना मैं उचित नहीं समझता और प्रत्येक विद्वान् के लिए यह लज्जा की बात है और होगी।" अतः यह प्रलोभन उसे धर्म च्युत नहीं कर सकेगा। ४ अगस्त को पण्डित भीमसेन से महाराजा साहिब की प्रथम भेंट हुई। आपने यद्यपि प्रथम तो यह कह दिया कि वेदों में मांस भक्षण का प्रत्यक्ष निषेध पाया जाता है, पर कलदार का ध्यान करके यह भी कह गये कि "तथापि यह मानकर कि हिंसक पशुओं का वध पाप नहीं—क्योंकि वेदों में उनके मारने का विधान पाया जाता है—कोई हानि भी नहीं।" इस प्रकार से दबे दान्तों ऐसे पशुओं के मांस भक्षण का विधान श्रुति सम्मत होने की व्यवस्था दे ही दी।

उधर ५ अगस्त को पण्डित लेखराम जी जोधपुर पहुँच गये। आपने यह समाचार पाते ही पं० भीमसेन का नाकों दम कर दिया। स्वामी प्रकाशानन्द ने सारे नगर में यह समाचार फैला दिया था के पंडित भीमसेन ने मांस भक्षण वेदानुकूल होने की व्यवस्था दे दी है। पंडित लेखराम जी ने भीमसेन से स्पष्ट शब्दों में कहा कि यह कलदार का प्रभाव है। पर याद रक्खो आत्मघात महा पाप होता है, सत्य की सदा जय होती है। यदि आपने महाराज से मांस के विषय में स्पष्ट शब्दों में निषेध न किया तो भारत की आर्य संस्थाओं में पैर रखने योग्य न छोड़ूंगा। इसका परिणाम यह हुआ के अगले दिन पण्डित भीमसेन जी जब महाराज से विदा होने के लिए मिलने गये तब बिना पूछे ही कहने लगे कि मांस भक्षण पाप है और वेदों में हानि कारक पशुओं को दण्ड देने तथा अधिक हानि पहुँचाने पर मार तक देनेकी भी आज्ञा है। परन्तु उन मरे हुए पशुओं का मांस अभक्ष्य ही है, और मैंने जो यह कहा था कि उनके मांस खा लेने से कोई दोष नहीं इसका यह आशय नहीं होना चाहिए कि 'उनका मांस खाना ही चाहिए और कोई दोष विशेष नहीं है। बल्कि मेरे कहने का स्पष्ट अभिप्राय यही था कि ऐसे पशुओं के मार डालने से संसार की कुछ हानि नहीं है और उपकारी पशुओं के मांस भक्षण की अपेक्षा दोष न्यून है।"

इतने मात्र विचार परिवर्तन का महाराज पर यह प्रभाव पड़ा कि पंडित जी को मिलने वाली १००० की थैली में आधे ही रह गये और पण्डित जी को उसी पर सन्तोष करके रहना पड़ा पर पं० लेखराम जी के होने से वे आत्मघात से बच गये यही अच्छा हुआ समझना चाहिए।

—०—

## मिर्ज़ाई विज्ञापन।

जोधपुर जाने से पहले ही आपको एक विज्ञापन मिला था जो "मिर्ज़ा गुलाम अहमद क़ादियानी" की ओर से प्रकाशित किया गया था। वह विज्ञापन यह था "आज की तारीख़ से जो २० फर्वरी सन् १८९३ है, छैः वर्ष के अन्तर्गत यह मनुष्य (आर्य पथिक) अपनी बदज़ुबानियों की वजह से जो इसने रसूल अल्लाह के हक़ में की हैं ओज़ान शदीद में मुब्तिला हो जायगा।

## पेशीन गोई।

इसके अतिरिक्त लेखराम जी के क़तल की भविष्यवाणी की सत्यता प्रकट करने के लिए इसी विज्ञापन में यह भी प्रकाशित किया कि अब मैं इस पेशीनगोई को प्रकट कर तमाम मुसल्मानों, आर्य्यों, ईसाइयों और दूसरे आदमियों पर प्रकाशित करता हूँ कि अगर छः वर्ष के अन्दर कोई अज़ाब लेखराम के ऊपर नाज़िल न हुआ तो समझो कि मैं ख़ुदा की ओर से नहीं हूँ। अगर मेरी पेशीनगोई झूठी निकली तो हर एक सज़ा के भुगतने के तैयार हूं। मेरे गले में रस्सी डाल कर मुझे सूली पर चढ़ा दिया जावे। इस विज्ञापन द्वारा मिर्ज़ा ने मानो पंडित जी के विषय में अपने मनके भावों को प्रकट कर दिया। विज्ञापन के आरम्भ में एक शेअर भी लिखा था जो यह था।

इल्ला यह दुश्मन नादानो बेराह।
तीरज़ तेगे बुर्राने मुहम्मद ॥

इसके अतिरिक्त मुसल्मानों को पण्डित जी के विरुद्ध ख़ूब उत्तेजित किया गया और ऐसे शब्दों का प्रयोग किया गया कि जिन को पढ़ कर मुसल्मान ख़ूब भड़क सकें।

आर्य्य पथिक ने इस विज्ञापन को ध्यान से पढ़ा और इसका जो उत्तर दिया वह यद्यपि सरल था परन्तु भाव पूर्ण एवं सार गर्भित था। उस पत्र में आर्यपथिक ने स्पष्ट शब्दों में लिख दिया कि "मिर्ज़ा जी विश्वास रक्खें कि मैं उनकी धमकियों से उनकी ओर आकर्षित नहीं हो सकता। हां यदि वे मुसलमानी मत की सत्यता सिद्ध कर दें और यतः उन्होंने घोषित किया है कि परमेश्वर ने उन्हें मसीह मौऊद पैदा किया है तो कुछ चमत्कार दिखलावें और उससे मुझे क़ायल करें। किन्तु वे चमत्कार निम्न प्रकार से होने चाहिएं।

(१) यदि मिर्ज़ा जी एक महीने के भीतर अपने इलहामी ख़ुदा की सहायता से संस्कृत में उपदेश सीख कर आर्य्य समाज के दो विद्वानों अर्थात् पण्डित देवदत्त जी शास्त्री और पण्डित श्याम जी कृष्ण वर्म्मा को पराजित करदें। तब हम आपके इलहाम के सामने अपने तईं पराजित मान लेंगे।

(२) छः शास्त्रों में से तीन शास्त्रों के ऋषिकृत भाष्य नहीं मिलते। यदि ये तीनों भाष्य अपने इलहाम देने वाले के द्वारा मंगवा देवें तो मैं आपकी सत्यता को अवश्य मानने के लिए बाध्य हूंगा।

आर्य पथिक की शर्तें बड़ी विचित्र हैं। वे अपने शत्रु से भी धर्म सेवा का काम लेना चाहते हैं। किन्तु आपको क्या पता था कि किस मनुष्य के बनावटी इलहाम से न होने वाले कामों को करवाने की अभिलाषा प्रकट कर रहे हैं वह भविष्य में अपने झूठे इलहामों को सच्चा कर दिखाने के लिए न जाने क्या २ गुल खिलाने वाला है। अस्तु उन्हीं दिनों आपको पता लगा कि हैदराबाद में मुसलमानी मत का बड़ा बल छा रहा है अच्छे २ हिन्दू घरा-

ने मुसल्मानी मत की ओर झुक रहे हैं। उन दिनों राजा कृष्ण प्रसाद जो बड़े बल से यवन मत की ओर आकर्षित हो रहे थे। आर्य पथिक उन दिनों कुछ रुग्ण से थे, पर फिर भी वे हैदराबाद पहुंचे और वहां जाकर खूब काम किया और अपने मनोर्थों में सफल हुए।

## लाहौर स्थिति।

स्वामी जी महाराज के जीवन चरित के विषय में जो सामग्री एकत्रित की गई थी वह अभी ज्यों की त्यों पड़ी थी। उस के लिए आवश्यकता थी कि किसी एक स्थान में बैठकर काम किया जाय परन्तु समाजों की मांग और पंडित जी के अपने धर्म प्रेम ने उन्हें एक स्थान पर टिकने न दिया। आर्य्यप्रतिनिधि सभा ने आपको सब काम बन्द करके लाहौर में बैठ कर काम करने के लिए कई बार विशेष नियम बना २ कर दिये। परन्तु लेखराम के धार्मिक जोश को कम करने में बेनियम भी कम न कर सके। पंडित लेखराम को बुलाने के लिए इतना पर्याप्त होता था कि" अमुक स्थान पर अमुक मुसल्मान होने वाला है अथवा अमुक मुसल्मान से शास्त्रार्थ की संभावना है" बस फिर लेखराम को कोई नहीं रोक सकता था। प्रतिनिधि सभा के अधिक लिखने अथवा जवाब मांगने पर पंडित जी का इतना मात्र लिख देना सबको चुप करा देता कि" उतने दिनों का वेतन काट लो ,,।

इसका अभिप्राय यह नहीं समझना चाहिए कि पंडित लेखराम अपनी शिरोमणि सभा की आज्ञाओं का अनादर वे किसी प्रकार के अभिमान में आकर करते थे। किन्तु बात यह है कि किसी भी हिन्दू का वैदिक धर्म छोड़ मुसल्मान अथवा ईसाई होना या किसी ईसाई

अथवा मुसलमान के मुख से वैदिक धर्म पर आक्षेप होना उन के लिए असह्य हो जाता था वैदिक धर्म के लिए उनके हृदय में जो भावना थी उससे प्रेरित हुए हुए वे सभा की साधारण आशाओं की भी उपेक्षा कर जाते थे।

इस प्रकार जीवन चरित्र लिखने एवं वैदिक धर्म की व्याख्यानादि द्वारा रक्षा करने में ही आपका अधिक समय व्यतीत होने लगा। अप्रैल सन् १८९६ के आरंभ में आपने इधर उधर का चक्कर लगा कर लाहौर में पहुंच जीवन चरित्र का पुनः काम आरंभ किया था कि समाचार मिला कि स्यालकोट का एक सिक्ख रिसाला धार्मिक विचारों में डाँवा डोल सा होरहा है। आपसे रहा न गया और जीवन चरित्र का काम छोड़ उसी समय स्यालकोट पहुँच गये। वहां पर पूर्ण प्रेम से अपने सिक्ख भाइयों को धर्म का महत्व समझाया तीन दिन तक बराबर मुसलमान मत पर व्याख्यान होते रहे और यूं आर्य्य पथिक के विशुद्ध व्याख्यानों के प्रभाव से सैकड़ों सिक्ख मुसलमान होने से बच गये। इन्हीं दिनों देहली में मौलवी अब्दुल-हक़ आदि पांच मुसलमानों ने पंडित जी पर दावा किया जो अन्त को न ठहर कर ख़ारिज होगया। देहली आदि से लौट कर पंडित जी रोपड़ आदि आर्यसमाजों के उत्सवों पर व्याख्यान देते हुए लाहौर की ओर आरहे थे कि आपको यह समाचार मिला कि कोई बालक-रामनामी उदासी साधु आर्य समाज के विरुद्ध पंजाब भर में बावेला मचा रहा है और हिन्दुओं को ठग रहा है। यह समाचार पाते ही पंडित जी उसके पीछे हो लिए और अन्त को "मेरा" ज़िला शाहपुर में उससे शास्त्रार्थ करने को जा पहुंचे। शास्त्रार्थ करने को वह उद्यत न हुआ पर पंडित जी के ३—४ व्याख्यान बड़े मार्के के हो गये।

—०—

# पुत्र लाभ।

इन्हीं दिनों पण्डित जी के हां पुत्रोत्पत्ति की आशा थी, इस लिए वे १५ मई सन् १८९५ ई० को पत्नी सहित अपने पुराने ग्राम "कुहटा को प्रस्थित हो गये। वहां पहुँचने पर १८ मई १८९५ को शनिवार की प्रातःकाल के ९—१० बजे के मध्य में पुत्र-रत्न उत्पन्न हुआ। पुत्र का जात एवं नाम करण संस्कार करके अधिक दिन वहां न ठहरे किन्तु २२ मई को ही पुनः यात्रा आरम्भ कर दी और मेरा आर्य्य समाज में पहुंच कर वालकराम उदासी को दोवारा शास्त्रार्थ के लिए जा ललकारा। तिसपर भी वालकराम फिर शास्त्रार्थ करने को उद्यत न होकर समय पर टाल गये। मेरा से लौट कर और लाहौर पहुंच कर अभी आपने जीवन चरित्र का काम आरम्भ किया ही था और अभी एक सप्ताह भी न बीतने पाया कि बाहर से फिर मांग आरम्भ हो गई। तथाच वे ८ जून को लाहौर से चल कर मन्ट गुमरी एवं सिब्बी होते हुये १४ जून १९१५ को केटे जा पहुंचे। १६ और १८ जून को दो व्याख्यान दिये और इसके साथ ही जुलाई के अन्तिम सप्ताह में आर्य्य समाज का उत्सव निश्चित कराया।

इन्हीं दिनों आपके पास अपने चचा पंडित गंडाराम जी का पत्र पहुंचा, जिसमें पंडित लेखरामजी के छोटे भाई तोताराम के १२ जून को देहान्त हो जाने का समाचार लिखा था। आर्य्य पथिक यह कुसमय समाचार पाकर रत्ती भर भी विचलित नहीं हुए, किन्तु उसी धैर्य से आपने सभा के मंत्री महाशय को एक पत्र लिखा, जिसमें लिखा था कि "मेरा छोटा भाई तोताराम १२ जून को मर गया। कल पेशावर से मेरे चचा का पत्र आया जिससे समाचार मालूम हुआ। हैरान हूँ कि क्या करूं। इधर समाज का

ाम, उधर घर की आपत्ति, हैरानी पर हैरानी हैं। यदि यहां से ाम छोड़ कर चला जाता हूं तो अपने समाज को हानि पहुंचती ! और वहां भी बहुत सा हर्ज है। लाचार मैंने आज ही घर पत्र लेख दिया है कि यदि वे मुझे आज्ञा दें तो जुलाई के अन्त तक क्वेटे रहूं, नहीं तो पत्र आने पर आपको सूचना दूंगा।"

पाठक ! देखा धैर्य का नमूना ! इत्यादि घटनाएं मुक्त कण्ठ से ंडित लेखराम के धैर्य, उत्साह, साहस, धर्म प्रेम एवं आत्मोत्सर्ग ी वृत्तियों की साक्षी देती हैं। यही धैर्य था यही धर्म प्रेम और ाहस था जिससे कि वे अन्तिम समय में विधर्मी की छुरी पेट में ुस जाने पर भी विचलित न हुए, आपके मुख से आह और नेत्र े आंसू की बूंद न टपकी। धन्य हो लेखरामधन्य हो ! तुम्हारा ात्साह, तुम्हारा धैर्य, और तुम सब धन्य हो।

मालूम होता है कि सम्बन्धियों ने आपका अपनी धार्मिक संस्था के असीम प्रेम देख घर आने के लिए अधिक लिखा पढ़ी ाहीं की। क्योंकि क्वेटे से हम आर्य पथिक को घर की ओर नहीं ापि उसी प्रान्त में प्रचार करते हुए पाते हैं।

इसी प्रकार आप धर्मप्रचार, व्याख्यान, शङ्का समाधान एवं समाजों के उत्सवों का काम करते हुए दीनानगर, अमृतसर, म्बाला, छावनी, शिमला आदि नगरों का काम समाप्त करके धर्म ाला जा पहुंचे। धर्मशाला में पहुंच कर अकेले लेखराम ने इतना ाम किया कि शायद १०-१५ उपदेशक मिल कर भी नहीं कर पाते र्मशाला में उन दिनों सनातनी ब्रह्मानन्द भारती ने नियोग की ाड़ लेकर आर्य समाज एवं स्वामी दयानन्द को बहुत बुरी तरह से ोसना आरंभ कर रक्खा था। आर्य समाज की ओर से यद्यपि नके व्याख्यानों के खण्डन के लिए कई व्याख्यान कराये गये पर वह तना धूर्त था कि किसी तरह बाज़ न आया। आर्य पथिक ने जाते

ही प्रथम तो शास्त्रार्थ की घोषणा की, जब वह इसके लिए उद्यत न हुआ तो आपने उसके व्याख्यानों के उत्तर में बड़े वेग से व्याख्यानों का सिलसिला आरंभ कर दिया आपका २ सितम्बर की रात क व्याख्यान बड़ा ही युक्ति युक्ति एवं प्रभाव शाली हुआ। इस व्याख्या में स्वामी ब्रह्मानन्द भारतीय आदि सनातनी लोग भी उपस्थित थे व्याख्यान इतना गवेषणा पूर्ण था कि जो लोग पण्डित जी को सद् लट्ठ बाज़ उपदेशक कहा करते थे वे भी इस व्याख्यान को सुन क झुक गये। इस व्याख्यान ने भारतीय महाशय की तमाम लील समाप्त करदी और सब प्रभाव मिटा दिया।

इसके अनन्तर भी आप लाहौर में रह कर जीवन चरित्र का काम स्थिरता पूर्वक नहीं कर सके, एवं बराबर पठानकोट मन्टगुमरी, गुजरात, अमृतसर; आदि समाजों में ही व्याख्यान आदि में लगे रहे। इन समाजों से निवृत्त होकर आप लाहौर पहुँचे और इस बार लाहौर में आपके तीन व्याख्यान हुए जिन में से तीसरा व्याख्यान बहुत ही गवेषणा पूर्ण था। लाहौर से ३ नवम्बर को मुलतान वहां से ७ को डेराग़ाज़ीखां, ११ को मुज़फ्फ़रगढ़ आदि में व्याख्यानों की धूम मचाकर आप लाहौर वापिस आगये और अपना काम आरंभ किया।

इन्हीं दिनों लाहौर आर्यसमाज का उत्सव था जिसमें आपको बहुत कुछ भाग लेना पड़ा। १ दिसम्बर को उत्सव के अन्तिम व्याख्यान में आपकी तर्क शक्ति का अपूर्व परिचय था लोग इस व्याख्यान पर अत्यन्त मोहित हो गये और वास्तव में यह व्याख्यान था भी उच्च कोटि का। इन्हीं दिनों आपका एक बड़ा पुस्तक "पुनर्जन्म सिद्धि" या "सुखते तत्तासुख" छप कर तैयार हो चुका था, जिसे आर्य जनता ने बड़े चाव एवं प्रेम से ख़रीदा और इस पुस्तक का भरपूर सत्कार किया।

लाहौर का उत्सव समाप्त करके जीवन चरित्र का काम आरंभ किये अभी पूरे पांच दिनभी व्यतीत नहीं हुए थे कि बाहरसे आपकी मांग फिर होने लगी । तथाच ८ दिसंबर को आपने लुधियाने में जाकर व्याख्यान दिया, १० को माझी वाडा और १३ को रोपड़ जा पहुँचे । रोपड़ से शरकपुर और शरकपुर से जालन्धर आर्यसमाज के उत्सव पर काम करके उत्सव के साथ ही इस वर्ष का दौरा भी समाप्त किया ।

जनवरी के आरंभ में ही पटियाला राज में पहुँच कर पांच व्याख्यान दिये । वहां से आप लाहौर आगये और जीवन चरित का काम करने लगे । किन्तु इस में कोई त्रुटि रहती दिखाई दी जिसे मिटाने के लिए आप ११ जनवरी १८९६ को पुनः मुलतान गये और ३ फर्वरी तक वहां ठहर कर सात व्याख्यान देने के अतिरिक्त अपना काम ठीक किया और ४ या ५ फ़र्वरी को लाहौर पहुँच कर अपने काम में लग गये । किन्तु आपको लाहौर कौन टिकने देता, बाहर से मांग आती हैं और आप बराबर बाहर का काम करते दिखाई देते हैं ।

६ फ़र्वरी से मियांमीर, अमृतसर, डेरा इस्माईलखां, और मुज़फ़्फरगढ़ आदि नगरों में २८ फ़र्वरी तक बराबर व्याख्यान, शंका-समाधान, एवं शास्त्रार्थ का काम करना पड़ा ।

इन नगरों से लौट कर कुछ दिन जीवन चरित का काम अवश्य किया पर अधिक नहीं । १५ मार्च के लगभग आपको पुनः यात्रा करनी पड़ी, और कर्नाल एवं दिल्ली आदि नगरों में वैदिक धर्म का नाद बजाना पड़ा । देहली से आप सीधे अजमेर पहुँचे । अजमेर में आर्यसमाज का वार्षिकोत्सव था । नगर कीर्त्तन में आपभी बड़े प्रेम में झूम २ कर व्याख्यान देते जाते थे । इस नगर कीर्त्तन में एक

ऐसी घटना हुई जिसे अजमेर के पुराने सभासद् शायद अबतक भूले न होंगे।

आप भजन मण्डली के साथ २ झूमते हुए जा रहे थे और बीच २ में कहीं २ व्याख्यान भी देते जाते थे। मार्ग में कुछ मुसलमानों से वार्त्तालाप होने लगा आपके उत्तर सुनकर कुछ मुसलमान भड़क उठे। "ख्वाजाचिश्ती" की समाधि या दरगाह समीप ही थी इसलिए यह समझ कर कि दरगाह के आतेही मुसलमान जोश में आकर दंगा कर देंगे, डर कर तमाम आर्यसमाजी एक २ कर के सरक गये आप अकेले खड़े हैं कोई सहायक नहीं है पर तिस पर भी आपके चेहरे पर भय का चिन्ह तक दिखाई नहीं देता। आप ने कहीं से सुन रक्खा था कि विधर्मी के धर्म मन्दिर अथवा व्याख्यान स्थान से ३० क़दम की दूरी पर प्रत्येक धर्मप्रचारक को अपने मत के समर्थन का अधिकार है"। स्मरण आते ही आप समाधि के द्वार पर पहुँचे और एक दो तीन चार बड़े उच्चस्वर से क़दम गिनना तथा भूमि मापना आरम्भ कर दिया। मुसलमान आपके इस कृत्य को आश्चर्य्य भरी दृष्टिसे देखने लगे। आप ठीक तीसवें क़दम पर पहुँचकर ठहर गये और वहीं पासकी एक पुल पर खड़े होकर "क़ब्रपरस्ती" एवं 'मर्दुमपरस्ती" का बड़े वेग से खण्डन करने लगे। दो चार कट्टर मुसलमानों ने साधारण मुसलमानों को बहुतेरा भड़काने का उद्योग किया पर सफल न हुए और आपके "एकेश्वर वाद" की एक २ चोट पर अधिकाधिक मोहित होते चले गये। उस समय तक वहां के आर्यसमाजियों को होश आ चुका था और दो चार मनुष्य धीरे धीरे आप के साथ क्या बीती इस बात का पता लगाने के लिए, वहां पहुँच गये थे। इन लोगों ने विश्वास कर लिया था कि आज पंडित जी का जीवित रहना अथवा बिना मारपीट हुए सूखा बचना असम्भव सा है। पर उनके

दोबारा आकर देखने से आश्चर्य की सीमा न रही और व्याख्याता के व्याख्यान का प्रभाव अपने भयभीत नेत्रों से स्वयं देख लिया।

जब तक आर्यपथिक का विवाह नहीं हुआ था, तब तक आप को श्रीमती आर्य प्रतिनिधि सभा की ओर से २५) मासिक वेतन मिला करता था। किन्तु विवाह हो जाने के बाद सभा ने बिना आवेदन अथवा किसी प्रकार की प्रेरणा किये स्वयं ही ५) वेतन वृद्धि करके ३०) मासिक कर दिया था। पुत्र के उत्पन्न होने पर आपने उचित समझा कि कुछ धन पुत्र की शिक्षा आदि के लिए अभी से जमा किया जावे। तथाच आपने हिन्दू परस्पर सहायक भण्डार के अतिरिक्त लाईफ़ इंशूमोरैन्स कम्पनी में भी सम्मिलित हो गये। जिस समय सभा को यह समाचार मिला, सभा ने बिना किसी प्रेरणा के ५) मासिक की पुनः वेतन वृद्धि करदी और अब आपका मासिक वेतन ३५) हो गया किन्तु पाठक वर्ग यह सुनकर आश्चर्य मानेंगे कि उनके मरने के पीछे बीमा कम्पनी आदि से प्राप्त हुए पूरे दो हज़ार २०००, रुपैये उनकी पत्नी श्रीमती लक्ष्मीदेवी ने स्वयं अपने काम में न लाकर सब के सब इस निमित्त से गुरुकुल कांगड़ी में जमा करा दिये कि "एक ब्रह्मचारी सदा के लिए आर्य्य पथिक के स्मारक में छात्र वृत्ति पाकर पढ़ा करे।" इसके अतिरिक्त आपकी जो पुस्तकें छपा या बिका करती थीं उनका लेखा लगाने से पता चला कि उनसे पण्डितजी को एक कौड़ी की भी आय या उपलब्धि नहीं होती थी।

मई सन् १८९६ के प्रथम भाग में ही पंडित जी के पिता का देहावसान हो गया जिसका समाचार भी पंडित जी के चचा पंडित गंडाराम जी ने ही दिया था। इस लिए आप १६ से २८ मई तक की छुट्टी लेकर अपने पुराने ग्राम कहूटा में चले गये। वहां पर प्रेत क्रिया से निवृत्त होकर अपने भाई तोताराम एवं पिता की

शरीर राख लेकर पुत्र एवं पत्नी सहित जालन्धर के लिए चलदिये। पिता एवं भाई की भस्म को झेलम नदी में बहा दिया गया और आप सपरिवार जालन्धर पहुँच गये। आपके पुत्र का शुभ नाम सुखदेव" था और पुत्र के साथ आपका समुचित स्नेह था। जालन्धर में वास करते हुए आपने निम्न लिखित दिनचर्या बना रक्खी थी जो आपकी दैनिकी deiary से उद्धृत की जाती है।

(१) चार घड़ी के तड़के उठकर शौचार्थ जंगल में जाना। पुनः दतौन, स्नान, सन्ध्या तथा सूर्योदय तक अग्नि होत्र करना। अग्नि होत्र लक्ष्मी जी कर लिया करें और कभी २ मैं स्वयं कर लिया करूंगा। प्रत्येक दिन व्यायाम ठीक ४० दण्ड।

(२) वेद पाठ एक घण्टा, कुरान, तोरेत, इञ्जील का स्वाध्याय एक घण्टा अथवा अन्य मतों की पुस्तकें।

(३) ११ बजे से २ बजे तक भोजन, विश्राम, गृहस्थ के कार्य्यादि और प्यारी लक्ष्मी को पढ़ाना।

(४) ३ से ५ बजे तक पुस्तकावलोकन तथा लेख, विशेषतया ऐतिहासिक विद्या सम्बन्धी।

(५) मल त्याग, शौच, सन्ध्या, भ्रमण, व्याख्यान अर्थात् लोगों को सद्धर्म का उपदेश देना। अग्नि होत्र, भोजन, घर का प्रबन्ध यह सब ६ से ९ बजे तक।

(६) अपने संशोधन के सम्बन्ध में विचार। सोने से पहले मुंह, हाथ, पांव धो कर कुल्ला करना और परमेश्वर का ध्यान करना। रात के १० बजे सोना पूरे छः घण्टे सोना कम बिलकुल नहीं। एक चार पाई पर न सोना चाहिए। ऋतुगामी होना चाहिए इत्यादि।

पाठक! इस दिन चर्य्या मात्र से ही आप अनुमान कर सकते हैं कि पंडित लेखराम के मस्तिष्क में अपने जीवन को सर्वांग पूर्ण बनाने के लिए कितने उच्च विचार विद्यमान थे। पण्डित जी की

इसी दिनचर्या से पता लगता है कि जहां वे स्वयं एक योग्य उपदेशक तथा सच्चे ब्राह्मण बनना चाहते थे वहां अपनी पत्नी को अपने से कम नहीं रखना चाहते थे। वे समय पर लक्ष्मी देवी को पढ़ाना समय पर अपने पुत्र को गोद में लेकर खिलाना एवं उससे हार्दिक प्रेम करके अपूर्व सन्तान सुख का अनुभव करना, समय पर घर का सब प्रबन्ध करना, आदि सांसारिक व्यवहार करते हुए भी धार्मिक सेवा से इधर उधर सरकना नहीं जानते थे।

पण्डित जी की आन्तरिक इच्छा थी कि उनकी भांति उनकी पत्नी देवी लक्ष्मी भी अपनी बहनों में धर्म प्रचार का काम किया करें। इसी लिए उसको पढ़ाने का विशेष उद्योग किया करते थे और कभी २ इस विषय पर उससे वार्त्तालाप भी किया करते। उसको उत्साहित एवं उत्तेजित करने तथा कार्य क्रम बतलाने के लिए पंडित जी ने आर्य समाजों के उत्सवों पर साथ ले जाना आरंभ कर दिया। तथाच आर्य समाज रोपड़, कर्तारपुर आदि नगरों की यात्रा पंडित जी ने देवी जी के साथ रहते ही की थी। इन्हीं दिनों एक बार आप अम्बाला एवं मथुरा समाजों के उत्सवों पर गये जहां पर आपका पुत्र सुखदेव बीमार हो गया और इसी लिए पुत्र सहित देवी जी को पण्डित जी ने घर लौटना उचित समझा।

बीमार पुत्र को वैसे ही जालन्धर पहुँचा कर आप शिमला आर्य समाज के उत्सव में सम्मिलित हुए। वहां से जब आप लौट कर जालन्धर पहुंचे तो सुख देव की बीमारी पहले से भी अधिक पाई। यद्यपि चिकित्सा एवं परिचर्य्या करने वालों ने उपाय करने में कोई कसर उठा न रक्खी थी पर "अवश्यं भाविनी भावः" के अनुसार सब के देखते २ लेखराम का प्यारा पुत्र २८ अगस्त १८९६ के दिन सवा वर्ष की आयु में इस भौतिक किन्तु कोमल

शरीर को त्याग स्वर्गारोही हो गया । इस कुसमय की मृत्यु से इस नवजात कुसम के मुर्झा जाने से लक्ष्मी देवी के कोमल हृदय पर वज्रपात सा जान पड़ा। उसे वहां रहना तक दूभर हो गय निदान पण्डित जी देवी जी को लेकर घर पहुंचा आये और इस मृत्यु के २-३ दिन पश्चात् ही पूर्ववत् धर्म कार्य में प्रवृत्त हो गये।

वाचक वृन्द ! कितने ऐसे धर्मधुरीण हैं जो इस प्रकार पुत्र-इक लौते पुत्र के मर जाने पर उससे लगी हुई मन की चोट पर मरहम पट्टी भी न करवाई हो कि पुनः अपने धर्म कार्य में प्रवृत्त हो गये हैं इतनी सहन शीलता ! इतना धैर्य !! इतनी धर्म निष्टा !!! कोन ठिकाना है ! सच है धर्म्मप्रचारक अपने धुनमें सचमुच पागल होता है इसमें सन्देह नहीं। उस समय लेखराम के चेहरे पर धैर्य एवं सहन शीलता का अपूर्व चमत्कार देखा गया जिसने शोक एवं मोह को अपने पास तक न आने दिया और दो ही दिन में इसे भुलाकर अपने कृत्य में प्रवृत्त हो गये।

## धर्म्म प्रचार ।

सितम्बर सन् १८९६ के आरम्भ में ही पण्डित जी ने पुनः धर्म प्रचार का काम आरंभ कर दिया। तथाच पहले पहल आप पसरूर ज़िला सियाल कोट पहुंचे। वहां पर एक व्याख्यान आपका बड़े मार्के का हुआ। अगले दिन जब आप व्याख्यान देने लगे तब एक प्रसिद्ध म्यूनिस्पल कमिश्नर महाशय मथुरादास जी उपदेश के पास बैठकर कुछ काना फूंसी करने लगे। यह देख पण्डित जी ने उसी समय कहा कि काना फूंसी किस बात पर हो रही है ? मथुरादास जी ने उत्तर दिया कि "ये महाशय थानेदार साहिब का सन्देश लाये हैं कि यदि आपके व्याख्यानों से किसी प्रकार का

लवा हो गया तो पुलिस ज़िम्मेदार न होगी" यह सुनते ही पण्डित ी को जोश आ गया और कड़क कर बोले "क्या हम किसी से ड़ने आये हैं, हम तो धर्मोपदेश करने आये हैं, जिसका मन माने ने नहीं न सुने। यदि इसी बात की शंका की जाती है तो हम खेंगे कि कौन बलवा करता है। हमें अपनी रक्षा के लिए केवल श्वर की सहायता ही काफ़ी है।" पण्डित जी में इतनी निर्भयता तना जोश, और इतना साहस केवल धर्म भावों के जोश और ादिक सचाई के कारण ही था। यहां से चल कर आप बज़ीराबाद ुंचे। वहां समाज का उत्सव था महात्मा मुन्शीराम का व्याख्यान होने वाला था। मुसलमानों की उपस्थिति अधिक देख पण्डित जी को व्याख्यान देने के लिए खड़ा कर दिया गया। उपस्थित मुसलमानों में क़ादियानी मिर्ज़ा के मुख्य चेले मौलवी नूरुद्दीन भी थे। पण्डितजी ने अपने व्याख्यान में ईश्वर स्वरूप का ऐसा उत्तम चित्र खींचा कि उपस्थित मुसलमानों के भी सिर घूमने लगे, किन्तु नूरुद्दीन महाशय भीतर ही भीतर विषैले सर्प की भांति बल खा रहे थे। व्याख्यान समाप्त होने पर सायंकाल को भ्रमण करते हुए पंडित जी अपने साथियों सहित जब लौट रहे थे तब मार्ग में मस्जिद के भीतर मौलवी साहिब का व्याख्यान हो रहा था और आप बड़े जोश में यह कह रहे थे कि "ओ बेवकूफ़ो! वह तो अपने व्याख्यान में तुम्हारे दीन और ईमान पर कुल्हाड़ा चला रहा था मगर तुम बकरों की तरह दाढ़ियां हिला रहे थे।" यह सुन पंडित जी ने और अधिक समय तक खड़े हो कर व्याख्यान सुनना चाहा, पर रात अधिक हो जाने से साथियों ने कुछ न करने दिया और मकान की ओर चल दिये।

इस के अतिरिक्त बज़ीराबाद जाने से पहले पंडित जी शिमला आर्य समाज के वार्षिक उत्सव पर भी गए थे। जहां की एक

घटना उल्लेखनीय है। शिमला में उन दिनों क़ादियानी मिर्ज़ा एक चेले "ख़्वाजा कमालुद्दीन" ने अपने मिशन का काम जारी क रक्खा था। ख़्वाजा साहिब के व्याख्यान होते थे और उनको सुन के लिए हमारे पंडित जी भी जाया करते थे। इसके साथ ; तीन बड़े प्रभाव शाली व्याख्यान आपने आर्यसमाज मन्दिर दिये। उन दिनों मुसलमान पंडित जी की युक्तियों से बहुत त आ चुके थे। तिस पर पंडित जी की ओर से—

## हुज्जतुल इस्लाम

नामी पुस्तकके छपने का विज्ञापन निकला हुआ था। मुसलमा सुन चुके थे कि पंडित लेखराम इस पुस्तक में मुसलमानी मत विरुद्ध अपना सारा बल लगाएंगे। इन्हीं बातों के कारण मिर्ज़ा साहिब ने पंडित जी को मौत की धमकी दी थी। मगर पंडित ज ने परवा न की और अपना काम करते चले गये।

पंडित जी ने आर्यसमाज में व्याख्यान आरम्भ किया। सम मण्डप श्रोताओं से खचाखच भर रहा था। मुसलमानों की उ स्थिति आशातीत हो रही थी। पंडित जी ने अपने व्याख्यान में य सिद्ध करना था कि इस्लामी पैग़म्बरों ने ख़ुदाई का दावा कर कुफ़्र फैलाया है इस बात के सिद्ध करने के लिए अन्यान्य प्रमाण के साथ एक "आयत" भी पढ़ी, जिसका भाव यह था कि मैं ख़ुदा नूर से हूँ। और इस पर किसी शायर का एक शेअर पढ़ा जिसक आशय यह था कि "मुहम्मदी यद्यपि ख़ुदा से जुदा प्रतीत होता परन्तु वह है वही ब्रह्म"। इस पर एक मुसलमान ग्रेजुएट नवयुव से न रहा गया। वह मध्य में से उठ कर खड़ा हो गया और क कपाते होटों से बोला "काफ़िरों को काटने वाली मुहम्मदी शमशी

ा मत भूल"। इतना सुनते ही पंडित जी पल मात्र के लिए रुके ौरा पुनः सिंह ध्वनि से गर्जते हुए बोले "मुझे बुज़दिल मुहम्मदी लवार की धमकी देता है। मैंने अधर्मी निर्बल मनुष्यों से डरना हीं सीखा। जानते नहीं हो मैं जान हथेली पर लिए फिरता हूं"

इतना कहना था कि सारे मंडप में सन्नाटा छा गया। इसके ाद व्याख्यान के अन्त तक फिर किसी ने चूं तक न की और माम कार्यवाही निर्विघ्न समाप्त हो गयी। यहीं से पंडित जी ालंधर गये जहां कि आपको अपने प्रिय पुत्र का अन्त्येष्टि करना ड़ा। यहां से पुनः पज़ीरावाद गये जहां का ऊपर वर्णन किया या है।

अब हम एक और उत्सव का वर्णन करना चाहते हैं जो पंडित ी के कई एक गुणों पर प्रकाश डालता है। १७ जनवरी सन् १८९७ ो पंडित जी आर्यसमाज "भागोवाल" ज़िला गुरदासपुर के त्सव पर पहुँचे। वहां आपके दो उच्च कोटि के व्याख्यानों के तिरिक्त एक मुसल्मान से शास्त्रार्थ भी हुआ था। कोई अढ़ाई ज़ार के लग भग जनोपस्थिति थी। उपस्थिति में २००० के लगभग ाट तथा शेष इतर लोग थे। प्रश्नकर्त्ता एक तुर्की टोपी वाले ुसल्मान युवक ग्रेजुएट थे और उत्तर देने वाले आर्य समाज के ोशीले प्रचारक पंडित लेखराम जी थे। प्रश्नोत्तर आरंभ होने से हले बाते होने में ही मुसल्मान युवक के मुख से निकला कि 'खुदा को बीच में क्यों घसीटते हो, क्या लाज़मी है कि खुदा को ान कर ही मुबाहसा चले ?।" अस्तु। पंडित जी समझ गये और श्नोत्तर आरंभ हुए। पंडित जी प्रथम ही यह प्रतिज्ञा कर चुके थे के दुर्जनतोषन्याय से हम जो भी प्रमाण देंगे वह क़ुरान और प्रमा-िक हदीसों का देंगे। इसी प्रकार दूसरे युवक भी यही प्रतिज्ञा कर के खड़े हुए थे कि जो प्रमाण दिया जावेगा वह मूल वेद का होगा

अस्तु वाद आरंभ हुआ और मौलवी युवक प्रेजूएट साहिब बो
"देखिये हवाला रगवेद, मन्दिल.....सोकत....." पंडित जीः-
"शुद्ध उच्चारण तक नहीं कर सकते हो और वेद जानने की प्रतिज्ञ
है। बस तुम निग्रह स्थान में आगये। या तो दावा छोड़ो या ह
मानो।"

युवकः—अजी हम वेद जानें या न जानें, ऐतराज़ तो ठीक है

पंडित जीः—पहले कहो—मैंने झूठ बोला कि मूल वेद जानत
हूं और झख मारी—यह कहो तब मुबाहसा आगे चलेगा"।

प्रेजुएट युवक ने खूब चक्कर काटे और अन्त में उसे यह कह
ही बना कि "अच्छा मैंने ग़लत कहा था कि मैं मूल वेद में से हवा
दूंगा—अब मेरे सवाल का जवाब दीजिए।

पंडित जीः—आये अब राहे रास्त पर, हां, अब जवाब देता।
यह वाद विवाद नियोग विषय पर था, इस लिए उत्तर देते हु
पंडित जी ने न केवल वैदिक नियोग का ही भली भांति मण्ड
किया, बल्कि मुसल्मानों के "मुता" के सिद्धान्त को भी उपस्थि
किया। इस पर मुहम्मदी युवक बोल उठा "सिर्फ़ क़ुरान की आय
पढ़ देने से काम न चलेगा। किसी मुस्तनिद तफसीर का हवाल
भी देना होगा"।

पंडित जीः—अच्छा बतलाओ तुम किस तफसीर को मुस्तनि
मानते हो ?"

मुहम्मदी युवक ने जिस तफसीर का नाम लिया वही पंडि
जी के हाथ में थी। उन्होंने झट उसमें से पढ़ कर सुना दिया
मालूम होता है कि मुसल्मान युवक ने उस तफसीर को स्वयं कभ
न देखा था। इसी लिए उस प्रमाण को स्वयं देखने के लिए पंडि
जी से वह पुस्तक मांगी। पंडित जी की हाज़िर जवाबी ने वहां भ
उनकी सहायता की। मुसल्मान युवक पहले ख़ुदा के विषय

अपने विचार प्रकट कर ही चुका था। पंडित जी उसी बात को लक्ष्य में रख कर सामने खड़े एक बूढ़े मौलवी को सम्बोधन कर के बोले।

मौलवी साहिब! आप तशरीफ़ लाकर हाज़रीन को यह इबारत पढ़ सुनाइए कि क़ुरान शरीफ़ की तफ़सीर में क्या लिखा है। इस दहरिए (नास्तिक) के हाथ में मैं क़ुरान शरीफ़ न दूंगा"।

मौलवी महाशय को दैवी शक्ति खींच लाई, और वे वेदी पर आकर पुस्तक हाथ में ले सुनाने लगे। सुना चुकने पर आपके मुंह से भी निकल गया कि "कौन कहता है कि क़ुरान मजीद में मुता हुक्म नहीं है"?)

इतना सुनते ही सारे का सारा सभा मण्डप तालियों से गूंज उठा, और इस अन्तिम करतल ध्वनि के साथ ही सभा विसर्जित हुई।

## जीवन नाटक की अन्तिम जवनिका।

पंडितजी का कार्यकाल समाप्त होने को है। प्रत्येक को जो आया है उसे जाने के लिए तैयार रहना होता है। कोई प्रसन्नता से जावे अथवा अप्रसन्नता से जाना अवश्यम्भावी है और सब को है। लेखराम भी संसार में आया था उसे जाना अवश्य था। धन्य हैं वे जो धर्म के काम में प्राण देते हैं। १५ फ़र्वरी सन् १८९७ के दिन एक मनुष्य लाला हंसराज प्रिंसिपल दयानन्द ऐंग्लो वैदिक कालिज लाहौर के पास पहुँचा और वही अगले दिन कालिज के हाल में घूमता हुआ देखा गया। पूछने पर पता लगा कि वह पंडित लेखराम की खोज में है उक्त पंडित जी को मिलना चाहता है। पता पाकर एक दिन पंडित जी से आमिला और कहने लगा कि "मैं कुछ दिन पहले हिन्दू था फिर मुसलमान हो गया मगर अब पुनः

अपने पुराने मत में आना चाहता हूँ,, यह आश्चर्य की बात है कि वह पहले हिन्दू रहते हुए भी हिन्दी स्पष्ट नहीं बोल सकता था और पंडित जी भी इस भेद से कुछ लाभ न उठा सके। अस्तु सदय हृदय लेखराम ने जवाब दिया कि "अच्छी बात मैं तुझे अवश्य शुद्ध करूंगा,,। इस मनुष्य का डील साधारण मनुष्यों की अपेक्षा कुछ छोटा, रंग काला, चेहरे पर माता के दाग़ और नाक बैठी हुई थी। सिर के बाल कुछ छोटे २ आँखें अन्दर की ओर घुसी हुई और आयु लगभग २५ वर्ष की था।

पंडित लेखराम को बाहर के आर्य भाई प्रायः सचेत किया करते कि मुसलमान आपके प्राणों को सङ्कट में डालने की चिन्ता में हैं और घात पाकर अपना काम किये बिना नहीं चूकेंगे मगर आप पर इन बातों का प्रभाव क्यों होने लगा था। आपने इस अनजाने मनुष्य का पता ठिकाना भी न पूछा और अपने पास रखने की अनुमति दे दी। कई एक आर्य पुरुषों ने उसका पता लगाना भी चाहा किन्तु उसने कभी किसी को स्पष्ट उत्तर न दिया। अपने आपको बंगाली बताता परन्तु बंगला भाषा के ८ शब्दों में से कठिनता से दो शब्द उसकी समझ में आ पाते थे। इससे अनुमान किया जा सकता है कि वह पटना अथवा भागलपुर के आस पास का होगा,, किन्तु उसकी शकल देख कर सम्भवतः प्रत्येक कह सकता कि वह कोई बूचड़ है।

यह मनुष्य छाया की भांति पंडित लेखराम के साथ रहने लगा। दो तीन बार पंडित जी के मकान पुर रोटी खाता भी देखा गया। इस में सन्देह नहीं कि दिन को वह पंडित जी का ही धातु प्रत्यय होकर पीछे लगा रहता पर रात को वह कहां जाता या कहां रहता इस बात का पता किसी को भी न था। १५-१६ दिन तक बराबर छाया पुरुष की भांति वह निर्दयी पंडित जी के साथ

रहा, और रात्रि को वहां जा सोता जहां पर कि पंडित जी की हत्या के लिए गोष्ठिएं हुआ करतीं।

१ मार्च १९८७ को पंडित जी मुलतान आर्यसमाज के उत्सव पर पहुँचे जहां पर ८ मार्च तक ६ व्याख्यान दिये। वहीं पर आप को आर्यसमाज सक्कर जाने के लिए सभा की ओर से तार पहुंचा परन्तु मौत सिर पर खड़ी हँस रही थी. सक्कर में प्लेग होने के कारण वहां जाने से मुलतान वासियों ने रोक लिया। मगर उन्हें क्या मालूम था कि जिस लेखराम को हम थोड़े से मृत्यु शङ्कित स्थान में जाने से रोक रहे हैं वह अब सीधे मौत के मुख में जानेवाला है। इस प्लेग से निकाल कर एक निर्दयी बूचड़ के हाथ दिया जा रहा है। अस्तु, इसके बाद मुजफ्फरगढ़ के लिए, तैयारियां की गईं मगर वहां का जाना भी न जाने क्यों स्थगित हुआ और मौत से घिरे हुए ६ मार्च की दो पहर को लाहौर पहुचें।

५ मार्च को ईद का दिन था। हत्यारे ने उस दिन पंडित जी के घर सभा के कार्यालय में एवं स्टेशन पर सब जगह लगभग २० चक्कर लगाये होंगे ६ मार्च की प्रातः काल को वह पुनः पंडित जी के मकान पर पहुंचा किन्तु पंडित जी अभी तक लाहौर नहीं पहुंचे थे। इसलिए मन ही मन बल खाता रहा। इसके बाद वह पुनः सभा के कार्य्यालय में गया पर वहां भी आशा पूरी न हुई २ बजे के लगभग वह पुनः सभा के कार्यालय में पहुंचा। पण्डित जो उस समय आ चुके थे। गली की ओर मुँह करके एक खिड़की में बैठ गया, मगर उस दिन वह खूब चौकन्ना जान पड़ा और ठहर २ कर चौकता और घूकता था। सभा के मुनीम ने कहा "पण्डित जी! यह स्थान खराब करता है,, आर्य पथिक बोले "भाई रहने भी दो तुम्हारा क्या बिगाड़ता है"।

उस दिन वह अन्य दिनों के साधारण नियम के विरुद्ध अपना सारा शरीर कम्बल से ढके हुए था। सभा से चलते समय कांप सा गया। पंडित जी ने पूछा कि बुख़ार तो नहीं है। धीरे से बोला हां और कुछ दर्द भी है। पण्डित जी उसको डाक्टर विष्णुदास के पास ले गये। नाड़ी देख कर डाक्टर ने कहा कि बुख़ार फुख़ार तो मालूम नहीं होता है यदि दर्द हो तो प्लास्टर लगा दिया जावे। हत्यारे ने समझा होगा कि प्लास्टर लगवाते समय कम्बल उतारना पड़ेगा तब कहीं भेद न खुल जाय कमर में लगी छुरी न प्रगट हो जावे इसलिए प्रकट रूप से बोला लगाने की नहीं कोई खाने या पीने की दवाई दिलवा दीजिए। आर्य्यपथिक अपने मरने की तैयारी स्वयम् कर रहे थे, मृत्यु से प्रभावित हुए २ बोले पीने की दवाई ही दी जावे। डाक्टर ने उत्तर दिया कि कोई भी शर्बत पिला दीजिए।

न जाने कहां से उसे शरबत पिलाया, और बाद एक बज़ाज़ की दुकान पर पहुँचे। उसी घातक के हाथ पसन्द करने के लिए एक कपड़ा माता जी के पास भिजवाया। बज़ाज़ ने उसके चले जाने पर कहा पण्डित जी? कितना भयानक मनुष्य है जिसे आप अपने साथ लिए फिरते हैं। उसकी शुद्धि की धुन में मस्त पंडित जी ने उत्तर दिया कि भाई ऐसा मत कहो यह धर्मात्मा आदमी है शुद्ध होने आया है। पण्डित जी घर पहुँच कर सदा की भांति खुले मैदान में चारपाई डाल जीवन चरित्र सम्बन्धी काम करने लगे। उनकी बाईं ओर एक पड़ी हुई कुरसी पर वह घातक बैठ गया सायं काल के कोई ६ बजे के लगभग लाला जीवनदास तथा केदार नाथ जी पण्डित जी के मकान पर आ वे और अगले रविवार के लिए व्याख्यान की प्रतिज्ञा करा कर चले गये। माता जी रसोई में लगीं थीं लक्ष्मी भी दूसरे कमरे में बैठीं पढ़ रही थीं।

उस समय पंडित जीने अपने स्वभावानुसार सरल शब्दों में हत्यारे से कहा अब देर हो गई है भाई! तुम भी आराम करो मगर हत्यारा न हिला कोई दस मिनिट बाद माता ने चौके में से ही आवाज़ देकर कहा पुत्र लेखराम तेल नहीं आया। पण्डितजी उस समय स्वामी दयानन्द की मृत्यु का अन्तिम दृश्य कागज़ों पर खींच रहे थे। माता के शब्द सुनते ही कागज़पत्र रख दिये और उठ कर अंगड़ाई लेते हुए बोले ओफ़ ओह भूल गया।"

इस समय अंगड़ाई लेते हुए पंडितजी ऐसे ढंगसे छाती तान के खड़े हुए कि जिस समय एवं इस ढंग की वह हत्यारा मानो प्रतीक्षा ही कर रहा था। एक दम अभ्यस्त हाथ से घातक ने तेज़ छुरी आप के पेट में घुसेड़दी और उसे ऐसा घुमाव दिया कि आठ दस घाव पेट के अन्दर एक दम हो गये और अन्तड़ियां बाहर निकल पड़ीं। इतना होने पर भी धर्मवीर ने अपनी वीरता का विसर्जन नहीं किया, आपके मुखसे न तो चिल्लाहट सुनी गई और न आर्तनाद ही सुनाई दिया वीरने अपनी स्वाभाविक वीरता का परिचय देते हुए उन्हीं वीरोचित शब्दों का ही उच्चारण किया। यदि धर्मवीर में कायरों का सा कायर पन होता तो शायद आस पास के लोग पहुंच सकते और घातक भी सुगमता से पकड़ा जाता परन्तु वहां पतितों पर दया का भाव अभी तक स्थिर था जिसने न केवल घातक को बाल २ बचा दिया, बल्कि धर्मवीर के आन्तरिक भावों को भी प्रकट कर दिया कि चन्दन यद्यपि कटता है पर काटने वाले कुल्हाड़े के मुख में सुगन्ध पहुँचने से रोकावट नहीं आने देता। अतँड़ियों का बाहर निकलना था कि बायें हाथ से बाहर निकली हुई अतँड़ियों को सम्हाल कर दहना हाथ घातक के हाथ पर डाल दिया। एक कमज़ोर और कायर मनुष्य अपना रक्त मात्र देख कर घबरा जाता और अपना होश तक गँवा बैठता है पर धर्मवीर सच

मुच एक वीर था और सिंहवीर था। सिंह के अन्दर चाहे रक्त की नदी बह जाय पर उसकी सचेतता में—सावधानता में अन्तर नहीं आया करता। धर्म वीर पहली झपट में ही लड़ते भिड़ते सीढ़ी के पास जा पहुंचे। घातक वस्तुतः अपना काम कर चुका था इसलिए वह भागने की चिन्ता में था, इस लिए उसको सीढ़ियों की ओर ही सरकना इष्ट था अस्तु वहां तक पहुँचते २ धर्मवीर ने उसके हाथ से छुरी छीन ली। उस समय घातक पापी के दो हाथ थे उसके मुक़ाबले में धर्मवीर का केवल एक ही हाथ काम कर रहा था, तिस पर रक्त की धारा बह रही थी। इस छीना झपटी में अधिक संभव था कि वह हत्यारा पुनः छुरी छीन कर एक और वार कर जाता कि इतने में लक्ष्मी जी ने झूंठी लोक लाज को त्याग हाथ जा मारा और यूं छुरी धर्मवीर के हाथ में ही रह गई। देवीजी ने इस भय से कि कहीं हत्यारा पुनः आक्रमण न करे धर्मवीर को रसोई की ओर खींचा। परन्तु घातक के निर्दयी हृदय को इस पर भी सन्तोष न हुआ, और वह अपनी खूनी आंखों को दिखाता हुआ पुनः पीछा करने लगा। इतने में अन्दर से माता जी निकल आईं और उन्होंने निर्दयी को दोनों हाथों से पकड़ लिया। तब तक वह पापी हांपने लग गया था, किन्तु तिस पर भी उसने पास पड़ा एक बेलन उठा माता जी के भी दो तीन चोटें कर दीं। माता जी सहन न कर सकीं और सचेत होकर भूमि पर गिर पड़ीं। इतने में घातक सीढ़ियों से उतर कर न जाने किधर विलीन हो गया।

कुछ पलों ही के अनन्तर लाला जीवन दास जी बाहर से लौटे तो बड़ा हृदय वेधक दृश्य देखा। धर्मवीर चारपाई पर सूधे लेटे हुए हैं, अन्तड़ियां एक हाथ से दबा रक्खी हैं, और रक्त की धार बह रही है। लाला जीवन दास बुढ़ापे में पहुँच चुके थे, यह दृश्य देखकर एक दम विह्वल हो उठे। इतने में और लोग भी आ गये

परन्तु वीर सिंह के मुख पर उदासी या मलिनता का कोई चिन्ह न था। पूछने पर उसी सरलता एवं वीरता से उत्तर दिया "वही दुष्ट जो युद्ध होने को आया था मार गया, डाक्टर को बुलाओ, शीघ्र बुलाओ"। चारों ओर यह भयानक समाचार फैल गया। डाक्टर और डाक्टरी के प्रायः विद्यार्थी एक दम जमा हो गये। धर्मवीर को चार पाई पर उचित रीति से लिटाया गया और चारपाई उठाकर हस्पताल की ओर चल दिये।

हस्पताल पहुंचते ही आर्यवीर को मेज़ पर लिटा दिया गया। उसी दिन अकस्मात् लाला मुन्शीराम ( वर्तमान स्वामी श्रद्धानन्द ) जी भी लाहौर पहुंचे थे। वे हस्पताल में साथ ही पहुंचे। उस समय आर्यवीर को मेज़ पर लिटाया गया था उसी समय लालाजी आगे बढ़े और धर्मवीर से अन्तिम समागम को तैयार हुए। इतने में आर्यवीर की दृष्टि लाला जी पर पड़ी और अपने दोनों हाथों को जो कि सिर पर रक्खे हुए थे नीचे उतार एवं जोड़कर अपने मुख से कहा "नमस्ते लाला जी! आप भी आ गये। लाला मुन्शीराम के नेत्रों से अश्रुधारा बहने लगी और दिल दहल गया। लाला जी कुछ सोच ही रहे थे कि आर्यवीर ने फिर कहा "लाला जी अविनय माफ़ करना"। इतना सुनते ही लाला मुन्शीराम जी के होश ठिकाने हो गये और रोना धोना छोड़ सम्हल कर बोले पंडित जी! आप तो परमात्मा पर पक्का विश्वास रखने वाले हैं, प्रत्येक संकट में उसी का सहारा ढूंढ़ा करते हैं; उसका ध्यान कीजिए"। इतना सुनकर आर्यवीर ने पुनः उत्तर दिया "अच्छा तो शायद मैं अच्छा हो जाऊंगा परन्तु लाला जी! मेरे अपराध क्षमा करना"। यह कहा और वेद मंत्र का जाप करने लगे।

**ओ३म् विश्वानिदेव सवितर्दुरितानि परासुव।**

**यद्भद्रन्तन्न आसुव** मरते समय तक गायत्री एवं इस मंत्र का

जप करते रहे। हां, बीच में कभी २ "परमेश्वर तुम महान हो परम पिता" इत्यादि शब्दों का उच्चारण भी कर जाते थे।

छुरी लगने के ठीक पौने दो घण्टे बाद डाक्टर पेरी आये। इसके अनन्तर पूरे दो घन्टे तक पेरी महाशय कटी अन्तड़ियों को सीते रहे। एक स्थान की अन्तड़ी कट कर दो टुकड़े हो चुकी थी, और उसमें ८ बड़े तथा कई छोटे २ घाव हो गये थे। पेरी महाशय हैरान थे कि जिसके अन्दर से दो घंटे तक खुले द्वार रक्त बहता रहा हो वह जीवित कैसे रह गया। उसने कहा कि साधारण अवस्था में तो इतना गहरा घाव लगने पर कोई भी मनुष्य जीवित नहीं रह सकता. परन्तु जितनी चेतना शक्ति का अब तक यह हाल है। वह शायद बच भी जावे; किन्तु यदि यह बच गया तो एक चमत्कार ही समझना चाहिए। आर्य वीर रात के डेढ़ बजे तक बराबर होश में रहे। केवल परमात्मा के नाम एवं वेद मंत्रों का जप करते रहे। उस समय न तो आपको घर वालों की चिन्ता थी और न ही निर्दयी घातक पर किसी प्रकार का क्रोध अथवा जोश, और न मौत से किसी प्रकार का भय ही विद्यमान था। हां, एक चिन्ता थी और वह आर्य समाज की थी, वह उस पौधे की थी जिसे स्वामी दयानन्द ने अपने हाथों से लगाया और अपने प्राणों से पुष्ट किया था, यदि चिन्ता थी तो उस महायज्ञ की जिसे कि देश एवं जाति के कल्याण के लिए ऋषि दयानन्द ने रचा था, यदि ध्यान था तो उस वैदिक धर्म का जो आदि सृष्टि से ईश्वर की ओर से मनुष्य मात्र को प्रदान किया गया था जिसकी कि आर्य जाति सदा से संरक्षक होती आई है। आर्य वीर को अपनी माता एवं पत्नी की रत्ती भर भी चिन्ता न थी क्योंकि वे परमेश्वर पर अटल विश्वास रखने वाले होने के कारण जानते थे कि प्रभु उनका सर्वतोभावेन सहायक एवं रक्षक है।

इसी प्रकार आपने अपने घातक पर भी किसी प्रकार का क्रोध प्रकट न किया और न उसके पकड़ने अथवा पता लगाने को ही कहा। क्योंकि जिस वैदिक धर्म के आर्यवीर प्रचारक एवं सेवक थे वह किसी भी अपकारी से बदला लेने की शिक्षा नहीं देता। हां, आपकी एक शिक्षा थी, वसीयत थी और आज्ञा थी जोकि अन्तिम थी और वह यह थी कि:

"आर्य्य समाज से लेख का काम बन्द नहीं होना चाहिए"

दो बजे के समीप आर्यवीर के तौर बदल गये। दो वार ज़ोरसे हाथ हिलाये और ५ मिन्टों में हाथ सीधे कर के हमसे सदाके लिए विदा होगये।

प्रातःकाल होते ही आर्यवीर की मृत्युका समाचार बिजली की भांति लाहौर भर में फैल गया। क्या हिन्दू, क्या जैनी, क्या ब्राह्मो क्या सिक्ख, सब के सब दुःखी जान पड़ते थे। अपने प्यारे से प्यारे बच्चे अथवा भाई की मौत पर भी इतना दुःख न हुआ होगा जितना कि आर्यवीर का वध सुनकर आर्यमात्र को हुआ। सबने छोटे २ विरोधों को भुलादिया। प्रातःकाल के दस बजे तक आर्यवीर के मृत शरीरवाले कमरे का सामना (मैदान) आर्यजनतासे भर गया। वे लोग भी जिन्होंने आर्यसमाज में कभी पैर भी न रक्खा था इस जंन समुदाय में दिखाई देरहे थे। सिविल सर्जन ने बड़ी सहानुभूति की दृष्टि से किसी मुसल्मान को आर्यवीर के मृतक शरीर के पास आने न दिया और दो घन्टों का काम १० मिनिट में समाप्त करके बाहर चले गये। आर्य पुरुषों ने भीतर जाकर अपने प्यारे आर्यवीर को सदा का यात्री पाया नेत्र बंद थे पर मुख पर कोई परिवर्त्तन न था मानो लेटे २ सन्ध्या में मग्न हो रहे हैं।

अश्रु धारा बहाते हुए आर्य पुरुषों ने वसन पहना दिये और बाहर लाते २ सारा शरीर फूलों से ढांप दिया गया। कमरा तैयार था

मुख खोल कर अन्तिम चित्र लिया गया। अर्थी उठाई गई और शहीद की यह अन्तिम सवारी लाहौर के प्रसिद्ध बाज़ार अनारकली में पहुंची। थोड़ी ही देर में कोई २० हज़ार मनुष्यों का तांता बंध गया। यहां पर आर्यवीर की माता भी आपहुँची जिसका हार्दिक विलाप सुनकर २० हज़ार मनुष्यों के नेत्र स्रोत बन कर बहने लगे एक युवक पर इस विलाप का इतना प्रभाव पड़ा कि वह अचेत हो कर गिर पड़ा।

अर्थी ने शहर में प्रवेश किया प्रत्येक मकान की छत आर्य्य देवियों से भरी हुई थी और बोझ के कारण फटी जाती थी। वे लोग जो अपनी दुकान से हिल कर कभी भी किसी सभा सुसायटी में जाते नहीं देखे गये, गुलाब जल लेले कर अर्थीपर बहा रहे थे। फूल बेचने वालों ने मुख मांगे दाम लिए। अन्त को सवारी नगर से बाहर निकली और वेद मंत्रों का उच्चारण करते हुए वैराग्य रस से सने हुए भजन गाते सात हज़ार के लग भग मनुष्य श्मशान तक पहुँचे उस समय का दृश्य देख कर मालूम होता था कि हज़ारों वर्षों की सोई हुई आर्य जाति की नींद खुल गई है और वह अब धर्म पर मिटने वालों का आदर करना सीख रही है।

श्मशान भूमि में अर्थी को आदर पूर्वक रक्खा गया, मुख से कपड़ा हटा कर आर्यवीर के सब ने अन्तिम दर्शन किये। एक भक्ति रस से भरा हुआ भजन गाया गया और उपस्थित सज्जनों की शान्ति के लिए जगन्नियन्ता जगदीश्वर से प्रार्थना की गई। मृतक शरीर का वेद मन्त्रों की आहुतियों द्वारा विधि पूर्वक दाह कर्म किया गया और आर्यवीर का वह बहु मूल्य शरीर केवल एक राख का ढेर सा बन गया तब आर्यवीर का गुण गान करते हुए सब लोग घरों को लौट गये।

## उपसंहार

वाचक वृन्द! यह है आर्यवीर पण्डित लेखराम की संक्षिप्त

जीवनी इसे हम विस्तृत जीवनी नहीं कह सकते, पर इतनी संक्षिप्त भी नहीं कि इस से कार्यक्रम का ठीक पता ही नहीं लग पाये। इस संक्षिप्त जीवनी को भी ध्यान पूर्वक पढ़ने से आप समझ सकते हैं कि आर्यवीर में सदाचार की मात्रा, ब्रह्मचर्य की मात्रा चरित्रगठन, मनोबल, धर्मनिष्ठा, निर्भयता, सत्यता, कर्मकुशलता, प्रतिज्ञापालन, सरलता, संलग्नता एवं गवेशणा बुद्धि आदि सद्गुणों की कमी न थी और ये सब ऐसे गुण थे कि जिनको आजकल के अधूरे उपदेशक बहुत कुछ लाभ उठा सकते एवं अपने आपको किसी योग्य बना सकते हैं

उनका त्यागमय एवं सरल जीवन इस बात की साक्षी है कि पुलिस जैसे सर्वात्मना बदनाम महकमे में रहकर भी मनुष्य किस प्रकार इन्द्रियों की दासता से मुक्त होकर अपने आपको सर्वांग पूर्ण बनाने की चेष्टा कर सकता है। आर्यवीर ने सन् १८८५ से लेकर १८९७ तक १२ वर्ष के लग भग पंजाब प्रति निधि के अधीन रह कर काम किया पर इतने समय में जितने भी मार्ग व्यय के बिल आपकी ओर से भेजे गये उन तमाम में आपके त्याग का नमूना दिखाई देता है। सभा की आज्ञा से यदि १०० मील की दूर पर जाना हुआ और मार्ग में ४० मील की दूरी पर अपना भी काम हुआ तो सभा से केवल ६० मील का किराया लेना और ४० मील तक का अपने पास से खर्च करना। यही कारण था कि सारी की सारी सभा आपकी तमाम बातों को सुनने के लिए सदा तैयार रहती।

आर्य्यवीर का ३५ वर्ष की आयु में विवाह कराना और बाल विवाह से सर्वथा इन्कार कर देना किन्तु इन ३५ वर्षों के भीतर या बाहर उनके चाल चलन का सर्वथा निर्दोष बने रहना बताता है कि आर्य्यवीर ने स्वामी दयानन्द की आज्ञा का पालन कितनी दृढ़ता से किया और उनके ब्रह्मचर्य सम्बन्धी उपदेशों का आप पर कितना

प्रभाव पड़ा। सदाचार धर्मपरायणता का दृढ़ स्तम्भ है। जो मनुष्य सदाचार सम्पन्न है वह धर्मपरायण अवश्य होता है और होना चाहिए। आर्यवीर जैसा सदाचार का पुतला धर्मपरायण न हो यह कभी स्वीकारा नहीं जा सकता। यही कारण है कि उनकी जीवनी में धर्म के लिए इतनी दृढ़ता, संलग्नता, एवं निर्भीकता देख रहे हैं अजमेर एवं शिमले की घटनाएं मुक्तकंठ से साक्षी दे रही हैं कि धर्म्मवीर में धर्म्म के लिए दृढ़ता, विश्वास एवं संलग्नता कितनी मात्रा में वर्तमान थी वे किसी भी आर्य्य समाजी को बिरादरी का गुलाम अथवा धर्मभीरु देख मनही मन दुःखी हुआ करते थे ऐसी २ बातों को वे प्रायः अपनी गुप्त नोट बुक में लिख लिया करते थे।

आर्य्य वीर जहां सदाचार पूर्वक जीवन व्यतीत करते हुए दुराचार से सीमान्त घृणा करते थे, वहां किसी भी दुराचारी पर क्रोध कभी प्रकट नहीं किया और न उससे ग्लानि पूर्वक बर्त्ताव ही किया। बल्कि आपकी कोशिश सदा उसके सुधार में रही और ऐसे दर्जन मनुष्यों का सुधार किया जिनसे कि मामूली सदाचारी नामधारी लोग सख्त घृणा किया करते थे।

यह प्रसिद्ध है कि कोई भी मनुष्य जितनी मात्रा में सच्चा, एवं स्पष्ट वक्ता किन्तु सरल होता है वह प्रायः क्रोधी हुआ करता है। उसकी क्रोध की मात्रा यद्यपि स्वाभाविक नहीं हुआ करती, क्योंकि वही मनुष्य थोड़ी देर बाद सरल प्रेम करता हुआ पाया जाता है। पर आम लोग उसे भी क्रोध ही कहा करते हैं। ऐसे मनुष्यों में जब कभी क्रोध उत्पन्न होता देखा गया है वह अकारण नहीं देखा गया और अधिक देर तक भी नहीं पाया गया इसलिए दृढ़ता से यही कहना होगा कि इन लोगों का क्रोध स्वाभाविक नहीं हुआ करता जो प्रत्येक समय अपने कुपरिणाम दिखाता रहे।

आर्यवीर लेखराम में भी हठ एवं क्रोध पाया जाता था। पर उन के समस्त जीवन में ऐसा कोई उदाहरण अथवा समय नहीं मिलता

इससे यह निश्चय किया जासके कि इनके हठ अथवा क्रोध ने
भी किसी की रत्ती भर भी हानि की हो जैसाकि साधारण मनुष्यों
हठ एवं क्रोध के परिणाम में प्रायः देखा गया है। आर्यवीर का
ोध भी सर्वथा विलक्षण था। उदाहरण के लिए:—एक वार आप
जमेर के आर्यसमाज मन्दिर में बैठे हुए कुछ लिख रहे थे कि
दिक प्रेस के संरक्षक बाबू राम विलास जी शारदा पहुँचे।
ापने केवल यह पूछा कि "पंडित जी क्या कर रहे हो उत्तर मिला
क "वैदिक प्रेस वालों की ज़रासी बेपरवाही से हमारे सिर पर
ाफ़त आजाती है और विरोधियों को उत्तर देते २ थक जाते हैं।
खो इस पत्थर पूजक ने एक पुस्तक लिखी है, जिसने प्रेस की
ापरवाही से फ़ायदा उठा कर बहुत से ऊट पटांग एतराज़ कर
ाले हैं। हम किस २ का उत्तर दें; आप लोग कुछ प्रबन्ध नहीं
रते" इतना सुन कर शारदा जीने नम्र भाव से उत्तर दिया कि
पंडित जी ये ग़लतियां पुरानी हैं उनके संशोधन का कुछ ते
बन्ध हो ही रहा है,,। इस पर क्रोध में भर कर बोले "ख़ाक कर
हे हो" इतना कहा और जो ५०—६० पृष्ठ उस पुस्तक के उत्तर में
लखे थे सब फाड़ डाले। शारदा जी उन काग़ज़ों को चुन २ कर
कट्ठा करने लगे तो आपने वे भी छीन लिए। तब शारदाजी उदास
ख वहां से निकल घर को चले गये। अगले दिन जब शारदाजी
यमानुसार समाज में न पहुंचे तब आप को चिन्ता हुई और स्वयं
नके मकान पर जाने को उद्यत हुए उस समय चपरासी दौड़ाया
या और शारदा जी झट पट कपड़े पहन मन्दिर में आ उपस्थित
ए। आपने आपही पूछा क्यों साहिब! आप आज आये क्यों
हीं? जब शारदा जी ने अपने न आ सकने का कारण बतलाया तब
ापका सब क्रोध काफ़ूर हो गया और गुलाब की भांति खिल
खिलाकर बोले ईश्वर जानता है शारदा जी आप आर्य समाज के
च्चे प्रेमी हैं। मैं इसपत्थर प्रस्त का जवाब ज़रूर लिखूंगा। तथा-

च आपने पुनः "सांच को आंच नहीं" नामी पुस्तक शिवनरायण प्रसाद कायस्थ की पुस्तक के उत्तर में लिखी जो प्रकाशित हो गई।

आर्यवीर लेखराम के जीवन में जहां हम क्रोध की मात्रा कहीं २ बढ़ी हुई पाते है वहां सरलता और मृदुता की मात्रा कुछ कम नहीं पाते। पाठक जानते हैं कि लेखरामजी ने लोगों के सन्देह प्रकट करने और किसी २ के स्पष्ट कह देने पर भी अपने घातक पर अन्त तक किसी प्रकार का सन्देह न किया और उसी सरलता से उसके साथ पेश आते रहे जिससे कि वे अन्यान्य समगोष्ठियों से आया करते थे। यह ठीक है और ऐसा होना ही चाहिए कि वे धर्म विरुद्ध किसी भी निर्बलता अथवा बात को सहन नहीं कर सकते थे। किन्तु इसे यदि क्रोध न कह कर धर्म परायणता एवं धर्म निष्ठा कहा जाय तो अधिक उचित प्रतीत होता है।

जहां आपमें परमत खण्डन की प्रवृत्ति खूब बढ़ी चढ़ी थी वहां स्वमत मण्डन की प्रवृत्ति भी कम न थी। धर्म निष्ठा, ईश्वर विश्वास आदि भाव आर्यवीर में कूट २ कर भरे हुए थे। सन्ध्या आदि की ओर जो प्रवृत्ति बाल्यपन से थी उसमें किसी प्रकार की कमी नहीं आने पाई बल्कि वह दिन प्रति दिन सुदृढ़ होती चली गई। ईश्वर चिन्तन अथवा सन्ध्योपासन का नियम आर्यवीर के लिए एक प्रकार से अटल नियम हो गया था वर्षा हो, आंधी हो, यात्रा हो, घरहो, अथवा मार्ग हो, सन्ध्योपासन से आर्यवीर को रोकने वाली कोई शक्ति न थी। एक बार आप शिकरम में बैठकर अन्यान्य आर्य सज्जनों के साथ लुधियाना से जगरावाँ को जा रहे थे कि समय पर पानी लेकर शौचको चले गए। लौटने पर पता लगा कि कुल्ला आदि करने के लिए जल नहीं रहा। अस्तु! आप शिकरम के उपर्युक्त भाग में थे तथा दूसरे आर्य भाई निचले भाग में थे। मार्गमें कुछ पूछने के लिए आपको नीचे से किसी ने आवाज़ दी पर ऊपर से कोई उत्तर न मिला। ऊपर उचककर देखने से मालूम हुआ कि आप

न्ध्या कर रहे हैं। गाड़ी के पड़ाव पर पहुँचते ही एक भाई ने छा कि:—पंडित जी! क्या पेशावरी सन्ध्या हो चुकी? आपने ड़ी गम्भीरता से उत्तर दिया कि "भोले भाई! स्नान कर्म है आ न हुआ, परन्तु सन्ध्या धर्म है और उसका न करना ाप है"

इसमें सन्देह नहीं कि आर्य वीर लेखराम में भी इतर मनुष्यों ी भांति दो एक साधारण कमज़ोरिएं थी, किन्तु जहां हम इस कार की निर्बलताएं पाते हैं। वहां कई प्रकार की दृढ़ताओं में राकाष्ठा तक पहुंचा हुआ देखते हैं। सब कुछ हो पर धर्म के ामलों में आर्यवीर ने राज़ीनामा कभी नहीं किया। इस बात में किसी का भी लिहाज़ या मुलाहज़ा करने को तैयार नहीं हुए। ह दृढ़ता धर्मवीर में बचपन से ही दिखाई देती है। कहते हैं के जब आप फ़ारसी मिडिल की परीक्षा देने बैठे तब आपने ारतवर्ष के इतिहास के सम्बन्ध में प्रश्नों का उत्तर सरकारी स्तकों के अनुसार देने के स्थान उनका उलटा खण्डन करना ारंभ कर दिया। किन्तु कितने आश्चर्य की बात है कि इस रीक्षा में अन्यान्य विषयों में अच्छे अङ्क प्राप्त करने पर इतिहास में फेल हुए २ लेखराम को वर्षों के पश्चात् पेशावर प्रान्त के अधिारियों ने ज़िला इतिहास लिखने के लिए ऐतिहासिक सामग्री एकत्रित करने के काम पर नियत किया था?

आयवीर यद्यपि अंग्रेज़ी से सर्वथा शून्य थे और आपकी संस्कृत भी बिलकुल मामूली थी पर पुरुषार्थ एवं धैर्य्य की सहायता से इन भाषाओं में लिखे हुए ग्रन्थों में से भी अपने मतलब की ऐसी विचित्र बातें निकालते थे कि जिनका उन भाषाओं के जानने वालों को स्वप्न में भी पता न होता था। इसलिए आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब एवं अन्यान्य आर्यसमाजों के अधिकारियों पर जब कभी वैदिक धर्म के सिद्धान्तों के विषय में बाहर से

प्रश्न आते तो उन प्रश्नों के उत्तर पाने के लिए पंडित लेखराम जी के पास भेजा करते।

अंग्रेज़ी पुस्तकों से अपने मतलब के प्रमाण ढूंढने की आपने बड़ी ही विचित्र विधि निकाल रक्खी थी। जब कभी किसी ऐसे अंग्रेज़ी जानने वाले के पास पहुँचते जिसे कि ग्रन्थावलोकन में अनुराग जान पड़ता तो आपका पहला प्रश्न यही हुआ करता था कि सुनाइए कोई नई किताब पढ़िए ?"। इसके उत्तर में यदि उसने किसी नवीन पुस्तक का नाम बतला दिया, तो जब तक उससे उस पुस्तक के समस्त विषयों को पूछ न लेते तब तक उसका पिण्ड न छोड़ते इसमें से जो बात इनको अपने मतलब की मालूम होती उस बात को उसी से अपनी नोट बुक में लिखवा लेते। पुनः वह लिखा हुआ नोट दूसरे प्रोजुएटों ( शिक्षितों ) से पढ़वाते, और एक दूसरे के अर्थों को आपस में मिलान करके निश्चय किया करते कि यह प्रमाण किस काम में आसकेगा। किन्तु इस नोट की यहीं तक पहुँच कर समाप्ति नहीं हो जाती थी बल्कि आप जिस २ भी नये अंग्रेजी पढ़े से मिलते उसी विषय पर उसके विशेष पढ़े पढ़ाये हुए का स्मरण दिला कर इस नोट की पुष्टि में जितने भी नवीन प्रमाण मिलते उपर्युक्त रीति से उन तमाम को भी धो मांज कर इकट्ठा करते जाते।

आर्यवीर लेखराम ने वैदिक धर्म के प्रचारार्थ केवल व्याख्यानों द्वारा ही अपनी योग्यता एवं कार्य कुशलता का परिचय नहीं दिया बल्कि लेखनी द्वारा भी इतने थोड़े समय में इतना काम किया है के किसी साधारण मनुष्य से होना असंभव सा जान पड़ता है सन् १८८४ ईस्वी के अन्तिम भाग में आपने मानव दासता से मुक्ति प्राप्त की, और सन् १८९७ के आदि भाग में प्राण त्याग किया। इन लगभग १२ वर्षों में जहां आपने लाखों नर नारियों के हृदयों तक वैदिक-धर्म की शिक्षा व्याख्यानों, शंका समाधानों, एवं शास्त्रार्थों

द्वारा पहुँचाई है और सैकड़ों छोटे बड़े लेख लिख कर आर्यगज़ट फ़ीरोज़पुर, सद्धर्म प्रचारक आदि पत्रों में प्रकाशित कराये हैं; वहां छोटी बड़ी ३३ पुस्तकें भी तैयार कीं जो संभवतः छपे हुए वर्त्तमान सत्यार्थ के आकार के ३००० पृष्ठों से कम में समाप्त न हो सकेंगी। इसके अतिरिक्त श्री स्वामी दयानन्द जी महाराज के जीवन चरित्र के लिए जितनी सामग्री आपने एकत्रित कर दी है वह उपर्युक्त पुस्तकों के अतिरिक्त है।

लोग कहते हैं और विशेषकर मुसलमान कहते हैं कि लेखराम के लेख एवं उनकी पर-धर्म सम्बन्धी आलोचनाएं बहुत ही कड़ी होती थीं। किन्तु समझने वाले समझते एवं जानने वाले जानते हैं कि जो मनुष्य एक दम स्पष्ट वक्ता होता है वह कितना खरा और उसकी भाषा में किस मात्रामें रूखापन होता है पण्डित लेखराम एक दम स्पष्ट वक्ता थे इसी लिए उनकी भाषा में यह खरापन दिखाई दे रहा है। तिस पर भी पर धर्म सम्बन्धी आलोचनाएं, धर्म वीर ने स्वतंत्रतया अपनी ओर से नहीं की बल्कि प्रायः वे सबकी सब उत्तर रूपमें लिखी गई हैं, यदि पर धर्म्म प्रचारक इन बातों को आरंभ न करते तो शायद पंडित लेखराम जी की पुस्तकों में हम इससे भी अधिक नर्मी एवं कोमलता पाते अस्तु।

पाठक! आप आर्य्यवीर लेख राम के बाल्य काल एवं स्कूली जीवन को मध्यकाल अर्थात् पुलिस की नौकरी में लगे जीवन की, तथा धर्म प्रचार में प्रवृत्त हुए २ जीवन को, ध्यान से आलोचात्मक दृष्टि से पढ़ें। आपको कई एक परिवर्त्तनों के मिलने पर भी आत्मगौरव, प्रतिज्ञापालन की दृढ़ता, ईश्वर विश्वास, धर्मपरायणता, सत्यनिष्ठा आदि गुण सर्वत्र एकसे मिलेंगे और आर्य वीर लेखराम को आप आर्यसमाज का एक स्थिर स्तम्भ पाएंगे।

ओ३म् शान्तिः ३

ओ३म्

स्टार बुक डिपो

प्रयाग।

श्रीमान् जी नमस्ते

एम. विरजानन्द ग्रन्थ पुस्तकालय
...क्रमांक 5586
...यानन्द महिला महाविद्यालय, कुरुक्षे...

आप यह बड़े हर्ष से सुनेंगे कि धर्म्म वीर पं० लेखराम जी, की पुस्तक कुल्लियात आर्य्य मुसाफ़िर का हिन्दी अनुवाद श्री स्वामी अनुभवानन्द जी शास्त्री ने करना आरम्भ कर दिया है। इसका पहिला हिस्सा प्रेस में छपने को आगया है और शीघ्र ही प्रकाशित होगा। इस पहिले हिस्से में धर्म्म वीर जी की जीवनी होगी और एक बड़ी रोचक भूमिका है उस के आगे से कुल्लियात का अनुवाद आरम्भ होता है। प्रत्येक भाग का मूल्य ॥) है परन्तु जो लोग स्थाई ग्राहक हो जायेंगे उनको केवल ।=) ही में हर एक भाग मिलेगा।

आज ही एक कार्ड भेज कर ग्राहक श्रेणी में नाम लिखा लीजिये और आर्य्यसमाज के एक अमूल्य ग्रन्थ को पढ़ कर लाभ उठाइये।

निवेदक :—

**मैनेजर**

स्टार बुक डिपो,

प्रयाग

स्टार प्रेस, प्रयाग।

वार्षिक मूल्य ३) **नवजीवन** प्रति अङ्क

—:०:—

आर्य्यसामाजिक जगत् का यह अद्वितीय मासिक पत्र है—यदि आप वैदिक धर्म के निगूढ़ तत्वों के रहस्य जानना चाहते हैं—वेदों और आर्य्यसामाजिक सिद्धान्तों पर हुई शङ्काओं का अलौकिक सप्रमाण समाधान देखना चाहते हैं—यदि समाज के विरोधियों का मुख बन्द करना चाहते हैं तो आज ही नवजीवन के ग्राहक बनिये इस में प्रति मास आर्य्य-समाज के विरुद्ध प्रकाशित पुस्तकों का खण्डन, कुरान की [illegible] का दिग्दर्शन, तथा वेद के संदिग्ध अंशों की पूर्ण व्याख्या, धार्मिक गुप्त अंशों की आलोचना, प्रसिद्ध विद्वानों की लेखनी से लिखित देश और जाति के हितैषी अपूर्व लेख प्रकाशित होते हैं। अब यदि आपको आर्य्यसमाज और उसके सिद्धान्तों से पूर्ण प्रेम है तो ग्राहक बन इसकी सहायता कीजिये।

नवजीवन का नया काम—हमने यह पूर्ण विचार किया है कि नवजीवन के ग्राहकों को प्रतिवर्ष कोई न कोई अपूर्व आर्षग्रन्थ उपहार में देकर वैदिक साहित्य की वृद्धि करें अतएव इस समय उपहार में एक वेद का भाष्य देने का हम पूर्ण प्रबन्ध कर रहे हैं केवल १५०० ग्राहकों को ही इस उपहार के देने का प्रबन्ध है अतएव शीघ्रता कीजिये समय चूके पछिताना होगा—ग्राहक संख्या शीघ्रता से बढ़ रही है संख्या पूर्ण होने पर हम [illegible] न दे सकेंगे। इस लिये शीघ्रता कीजिये।

1921

[illegible] प्रकाशक—क्षेमचन्द्र मल्ला
स्टार प्रेस, प्रयाग